वक़्त की अहमियत

अल्लामा यूसुफ़ अल-क़रज़ावी

अरबी से उर्दू

मौलाना अब्दुल-हलीम फ़लाही

उर्दू से हिन्दी

एस० ख़ालिद निज़ामी

विषय-सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम।

"अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है।"

दो शब्द

अल्लामा यूसुफ़ अल-क़रज़ावी की किताब 'अल-वक़्तु फ़ी हयातिल-मुस्लिम' अरबी से उर्दू तर्जमा 'वक़्त की अहमियत' का हिन्दी अनुवाद आपके हाथों में है। यह विषय इतना अहम है कि इसकी अहमियत से न तो पुराने ज़माने में किसी ने इनकार किया था और न आज के इस नए ज़माने में कोई इसका इनकार कर सकता है। बल्कि इस नए दौर में तो इसकी अहमियत कुछ ज़्यादा ही बढ़ गई है। अल्लामा यूसुफ़ अल-क़रज़ावी ने अपनी इस किताब में वक़्त की अहमियत पर बहुत ही प्रभावशाली अन्दाज़ में दलीलों के साथ रौशनी डाली है। सबसे पहले तो लेखक ने क़ुरआन और सुन्नत में वक़्त की क़द्रो-क़ीमत और उसकी अहमियत का जाइज़ा लिया है और बताया है कि इस्लाम के ख़ास क़ायदे-क़ानून और आदाब किस तरह किसी मुसलमान की दिनचर्या को व्यवस्थित करते हैं और उसे वक़्त की पाबन्दी का आदी बनाते हैं। मगर इस्लाम के इस तरबियती निज़ाम (व्यवस्था) से सिर्फ़ वही लोग फ़ायदा उठा सकते हैं जो उन बातों की पाबन्दी करें जिनकी तालीम इस्लाम ने दी है।

इसके बाद लेखक ने भूत, वर्तमान और भविष्य में पाए जानेवाले नज़रियों का बड़ी गहराई से जाइज़ा लिया है और उनकी कमियों और कोताहियों को पूरी तरह वाज़ेह किया है।

फिर आगे चलकर इन तीनों ज़मानों से मुताल्लिक़ इस्लामी दृष्टिकोण को बहुत ही अच्छे अन्दाज़ में वाज़ेह किया है और इसे विभिन्न दलीलों और तर्कों से साबित किया है कि इस्लाम अस्ल में वक़्त का सन्तुलित तसव्वुर पेश करता है।

किताब की इसी अहमियत को देखते हुए इसे हिन्दी में अनुवाद किया

जा रहा है ताकि इस क़ीमती किताब से और भी लोग फ़ायदा उठा सकें।

अल्लामा यूसुफ़ अल-क़रज़ावी इस्लामी दुनिया की एक महान शख़्सियत हैं। आप दीनी, दावती और तहरीकी हल्क़ों में एक मुफ़क्किर (चिंतक) और धर्म-प्रचारक की हैसियत से जाने जाते हैं।

अल्लाह से दुआ है कि वह इस किताब को हम सबके लिए ज़्यादा-से-ज़्यादा फ़ायदेमन्द बनाए और पढ़नेवालों से गुज़ारिश है कि अगर यह किताब आपके लिए कुछ भी फ़ायदेमन्द हो तो लेखक, प्रकाशक और अनुवादक को अपनी दुआओं में ज़रूर याद रखें।

—प्रकाशक

भूमिका

"वक़्त की क़द्रो-क़ीमत मुसलमान की ज़िन्दगी में" के उनवान (शीर्षक) से मैं अख़बारों में लिख रहा था कि मुताले के दरमियान क़ुरआन और सुन्नत (हदीस) में वक़्त से मुताल्लिक़ हद दर्जा एहतिमाम ने मुझे इस बात पर आमादा किया कि उन पन्नों (Pages) को मैं किताबी शक्ल दे दूँ।

इसी दरमियान मैंने देखा कि पहले दौर के मुसलमान अपने वक़्त के सिलसिले में इतनी लालसा रखते थे कि उनकी यह लालसा उनके बाद के लोगों में धन-दौलत की लालसा से भी बढ़ी हुई थी। इसी लालसा की वजह से उनके लिए नफ़ा पहुँचानेवाला इल्म, नेक अमल, जिहाद और खुली जीत का हासिल करना मुमकिन हुआ, और इसी के नतीजे में वह तहज़ीब (संस्कृति) वुजूद में आई जिसकी जड़ें बड़ी गहरी हैं और जिसकी शाख़ाएँ चारों तरफ़ फैली हुई हैं।

फिर मैं आज दुनिया में मुसलमानों को देख रहा हूँ कि वे किस तरह अपने वक़्त को बरबाद कर रहे हैं और अपनी उम्रें लुटा रहे हैं। यहाँ तक कि वे इस सिलसिले में बेवक़ूफ़ी से गुज़रकर मदहोशी की हद तक पहुँच गए हैं। यही वजह है कि आज वे इनसानियत के क़ाफ़िले के पिछले हिस्से में धकेल दिए गए हैं, हालाँकि एक दिन वह भी था कि उसी क़ाफ़िले की बागडोर उनके हाथ में थी। इस मौजूदा दौर में उन्होंने न दुनियावालों की तरह अपनी दुनिया बसाने का काम किया, और न दीनदारों की तरह अपनी आख़िरत बनाने का, बल्कि दुनिया और आख़िरत दोनों बरबाद कर ली और नतीजा यह हुआ कि दोनों जहान की नेमतों से महरूम (वंचित) हो गए।

अगर मुसलमान सूझ-बूझ से काम लेते तो वे दुनिया के लिए इस तरह काम करते जैसे कि उन्हें हमेशा यहाँ रहना है, और आख़िरत के लिए इस

तरह काम करते मानो कि कल मरना है। और क़ुरआन की इस दुआ को अपनी पहचान बनाते—

رَبَّنَا اٰتِنَا فِى الدُّنْيَا حَسَنَةً وَّفِى الْاٰخِرَةِ حَسَنَةً وَّقِنَا عَذَابَ النَّارِ.

रब्बना आतिना फ़िद-दुनिया ह-स-नतँव व फ़िल-आख़ि-रति ह-स-नतँव व क़िना अज़ाबन-नार।

"ऐ हमारे रब! हमें दुनिया में भी भलाई दे और आख़िरत में भी भलाई दे, और आग के अज़ाब से हमें बचा।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-201)

अगर उन्होंने अक़्ल और समझ-बूझ से काम लिया तो बहुत मुमकिन है कि ज़माना उन्हें सिखा दे, और रात-दिन का आना-जाना उन्हें होशियार कर दे—

"ज़मीन और आसमानों की पैदाइश में रात और दिन के बारी-बारी से आने-जाने में उन होशमन्द लोगों के लिए बहुत-सी निशानियाँ हैं जो उठते, बैठते और लेटते, हर हाल में अल्लाह को याद करते हैं और ज़मीन और आसमानों की संरचना में ग़ौरो-फ़िक्र करते हैं। (वे बेइख़्तियार बोल उठते हैं) ऐ हमारे रब! यह सब कुछ तूने यूँ ही और बे-मक़सद नहीं बनाया है। तू पाक है (इससे कि बेकार और बेफ़ायदा काम करे)। तो तू हमें दोज़ख़ की आग से बचा ले, ऐ हमारे रब! तूने जिसे दोज़ख़ में डाला उसे हक़ीक़त में बड़ी ज़िल्लत और रुसवाई में डाल दिया, और फिर ऐसे जालिमों का कोई मददगार न होगा। ऐ हमारे मालिक! हमने एक पुकारनेवाले को सुना जो ईमान की तरफ़ बुलाता था और कहता था कि अपने रब को मानो। हमने उसकी दावत क़बूल कर ली, तो ऐ हमारे रब! जो ग़लतियाँ हमसे हुई हैं उन्हें अनदेखा कर दे। जो बुराइयाँ हममें हैं उन्हें दूर कर दे और हमारा ख़ातिमा नेक लोगों के साथ कर। ऐ अल्लाह! जो वादे तूने अपने रसूलों के ज़रिए से किए हैं उनको

हमारे साथ पूरा कर और क़ियामत के दिन हमें रुसवाई में न डाल। बेशक, तू अपने-वादे के ख़िलाफ़ करनेवाला नहीं है।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयतें-190-194)

वक़्त की अहमियत क़ुरआन और हदीस की रौशनी में

क़ुरआन और हदीस में वक़्त की अहमियत विभिन्न पहलुओं से बताई गई है। क़ुरआन इसकी अहमियत का ज़िक्र करते हुए इसे अल्लाह का तोहफ़ा क़रार देता है—

"और उस (अल्लाह) ने सूरज और चाँद को तुम्हारी ख़िदमत पर लगाया कि लगातार चले जा रहे हैं और रात और दिन को तुम्हारी ख़िदमत पर लगाया। उस (अल्लाह) ने वह सब कुछ तुम्हें दिया जो तुमने माँगा। अगर तुम अल्लाह की नेमतों को गिनना चाहो तो नहीं गिन सकते।" (क़ुरआन, सूरा-14 इबराहीम, आयतें-33,34)

दूसरी जगह अल्लाह फ़रमाता है—

"और वही है जिसने रात और दिन को एक-दूसरे का जानशीन (स्थानापन्न) बनाया, हर उस शख़्स के लिए जो सबक़ लेना चाहे या शुक्रगुज़ार होना चाहे।" (क़ुरआन, सूरा-25 फ़ुरक़ान, आयत-62)

यानी रात को बनाया कि वह दिन के बाद आए और दिन को बनाया कि वह रात के बाद आए, तो जिसका कोई काम इन दोनों में से किसी एक में करने से रह गया तो वह उसकी भरपाई दूसरे में करने की कोशिश करे।

वक़्त की अहमियत बयान करने के लिए अल्लाह तआला ने बहुत-सी मक्की सूरतों के शुरू में इसकी क़समें खाई हैं। मिसाल के तौर पर—वल्लैल (रात की क़सम), वन-नहार (दिन की क़सम), वल-फ़ज्र (फ़ज्र की क़सम), वज़-ज़ुहा (रौशनी की क़सम), वल-अस्र (ज़माने की क़सम)।

जैसा कि अल्लाह फ़रमाता है—

"क़सम है रात की जब वह छा जाए, और दिन की जबकि वह रौशन हो।" (क़ुरआन, सूरा-92 लैल, आयतें-1,2)

"क़सम है रौशन (चढ़ते) दिन की, और रात की जब वह सुकून के साथ तारी हो।" (क़ुरआन, सूरा-93 ज़ुहा, आयतें-1,2)

"क़सम है फ़ज्र की, और दस रातों की।"

(क़ुरआन, सूरा-89 फ़ज्र, आयतें-1,2)

"ज़माने की क़सम, इनसान हक़ीक़त में घाटे में है।"

(क़ुरआन, सूरा-103 अस्र, आयतें-1,2)

यह बात क़ुरआन के आलिमों ने बताई है कि जब अल्लाह अपनी मख़लूक़ (सृष्टि) में से किसी चीज़ की क़सम खाता है तो सिर्फ़ इसलिए कि लोगों का ध्यान उसकी तरफ़ आकर्षित करे, और उसके बड़े फ़ायदों और प्रभावों से आगाह कराए।

क़ुरआन की तरह नबी (सल्ल०) की हदीसों ने भी वक़्त की अहमियत और उसकी क़द्रो-क़ीमत पर बहुत ज़ोर दिया है और क़ियामत के दिन ख़ुदा के सामने इनसान को वक़्त के मुताल्लिक़ जवाबदेह ठहराया है। यहाँ तक कि हिसाब के दिन जो चार बुनियादी सवाल हर इनसान से पूछे जाएँगे उनमें से दो का ताल्लुक़ वक़्त से है। हज़रत मुआज़-बिन-जबल (रज़ि०) रिवायत करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"क़ियामत के दिन कोई भी शख़्स अपनी जगह से हिल न सकेगा जब तक कि चार सवालों के जवाब न दे दे— (1) उम्र कहाँ गुज़ारी, (2) जवानी किस काम में खपाई, (3) माल कहाँ से कमाया और कहाँ ख़र्च किया और (4) अपने इल्म पर कहाँ तक अमल किया।"

(हदीस : तबरानी)

इनसान से उसकी उम्र के बारे में आम तौर पर और जवानी के बारे में ख़ास तौर पर सवाल किया जाएगा। हालाँकि जवानी भी उम्र ही का एक हिस्सा है लेकिन इसकी एक नुमायाँ हैसियत है— इसलिए कि यह इरादा और हौसला और कुछ कर गुज़रने की उम्र होती है, और यह दो कमज़ोरियों— बचपन और बुढ़ापे— के बीच ताक़त और क़ुव्वत का मरहला (चरण) है। जैसा कि अल्लाह ने फ़रमाया—

"अल्लाह ही तो है जिसने कमज़ोरी की हालत से तुम्हारी पैदाइश की शुरुआत की, फिर उस कमज़ोरी के बाद तुम्हें ताक़त दी, फिर उस ताक़त के बाद तुम्हें कमज़ोर और बूढ़ा कर दिया।"

(क़ुरआन, सूरा-30 रूम, आयत-54)

इस्लामी फ़राइज़ और आदाब वक़्त की क़द्रो-क़ीमत पर ज़ोर देते हैं

इस्लामी फ़राइज़ और आदाब वक़्त की क़द्रो-क़ीमत और उसकी अहमियत को हर मरहले में, बल्कि हर हिस्से में भरपूर तरीक़े से स्पष्ट करते हैं। और इनसान के अन्दर कायनात की गरदिश और दिन-रात के आने-जाने के साथ वक़्त की अहमियत का एहसास और शुऊर बेदार (जागरूक) करते हैं।

चुनाँचे हम देखते हैं कि जब रात रुख़सत होती है और सुबह के चेहरे पर से अपना नक़ाब उतारती है तो अल्लाह की तरफ़ से बुलानेवाला उठता है और दुनिया में अज़ान की आवाज़ की गूँज से फ़िज़ा को भर देता है, जो कानों में रस घोलता है, ग़ाफ़िलों को होशियार करता है और सोनेवालों को जगाता है कि वे उठें और सुबह की पाकीज़गी से फ़ायदा उठाएँ।

حَيَّ عَلَى الصَّلٰوةِ

हय-य अलस्सलाह

(आओ नमाज़ की तरफ़),

حَيَّ عَلَى الْفَلَاحِ

हय-य अलल-फ़लाह

(आओ भलाई की तरफ़),

اَلصَّلٰوةُ خَيْرٌ مِّنَ النَّوْمِ

अस-सलातु ख़ैरुम-मिनन-नौम

(नमाज़ नींद से बेहतर है)

लिहाज़ा जो लोग पाक-साफ़ और बा-वुज़ू होते हैं, जिनकी ज़बानें अल्लाह के ज़िक्र से तर और दिल शुक्रगुज़ारियों से भरे हुए होते हैं वे उसका जवाब देते हैं—

صَدَقْتَ وَبَرَرْتَ

सदक़्-त व बरर्-त

(तुमने सच कहा और तुमने नेक काम किया)

और जैसे ही वे जल्दी से नमाज़ के लिए उठते हैं शैतान की लगाई हुई सारी गिरहें खुल जाती हैं।[1]

जब दोपहर का वक़्त हो जाता है, सूरज ढलने लगता है और लोग दुनिया के कामों में लग जाते हैं तो उस वक़्त आवाज़ लगानेवाला अल्लाह की बड़ाई, बुज़ुर्गी और मुहम्मद (सल्ल॰) की पैग़म्बरी के इक़रार के साथ नमाज़ और कामयाबी की तरफ़ लोगों को बुलाता है और यह पुकार सुनते ही लोग अपने कारोबार और ज़िन्दगी की व्यस्तताओं से बाहर निकल आते हैं, ताकि कुछ मिनट के लिए अपने पैदा करनेवाले और रोज़ी देनेवाले ख़ुदा के सामने खड़े हों और मालो-दौलत के हासिल करने की दौड़-धूप से अपने आपको थोड़ी देर के लिए यकसू कर लें। यह कैफ़ियत आम तौर पर दोपहर (ज़ुहर) के वक़्त होती है।

जब हर चीज़ का साया उसके बराबर हो जाता है और सूरज किसी क़द्र ढलने लगता है तो मुअज़्ज़िन (अज़ान देनेवाला) तीसरी बार अस्र की नमाज़ के लिए पुकारता है। जब सूरज छुप जाता है और उसका चेहरा आसमान से ग़ायब हो जाता है तो चौथी बार मुअज़्ज़िन मग़रिब की नमाज़ के लिए बुलाता है।

जब क्षितिज की लालिमा ग़ायब हो जाती है तो एक बार फिर इशा की नमाज़ के लिए अज़ान की आवाज़ बुलन्द होती है। यह अज़ान दिन के ख़ातिमे का एलान करती है। इस तरह एक मुसलमान अपने दिन की शुरुआत भी नमाज़ से करता है और ख़ातिमा भी।

हफ़्ते में एक दिन जुमा आता है। उस दिन मुनादी (आवाज़ लगानेवाला)

1. यहाँ इशारा उस सहीह हदीस की तरफ़ है जिसकी रिवायत बुख़ारी ने अपनी किताब सहीह बुख़ारी में की है "तुममें से हरेक की गर्दन के पिछले हिस्से (गुद्दी) पर शैतान तीन गिरहें लगाता है जबकि वह सोया होता है।"

हफ़्तेवारी इजतिमाई नमाज़ यानी जुमे की नमाज़ के लिए एक नई आवा
लगाता है। उसकी अपनी एक ख़ास शक्ल है और कुछ ख़ास शर्तें।

इन फ़र्ज़ नमाज़ों के अलावा तहज्जुद की नमाज़ है। यह नमाज़ अल्ला
के ख़ास बन्दे पढ़ते हैं। इशराक़, चाश्त और कुछ दूसरी बहुत-सी नफ़्
नमाज़ें भी विभिन्न वक़्तों में पढ़ी जाती हैं।

हर महीने के शुरू में जब नया चाँद निकलता है तो मुसलमान इसक
इस्तिक़बाल अपने रब से इस दुआ के साथ करते हैं—

اللّٰهُ اَكْبَرُ، اَللّٰهُمَّ أَهِلَّهُ عَلَيْنَا بِالْاَمْنِ وَالْاِيْمَانِ
وَالسَّلَامَةِ وَالْاِسْلَامِ وَالتَّوْفِيْقِ لِمَا تُحِبُّ وَتَرْضَى رَبِّيْ
وَرَبُّكَ اللّٰهُ.

अल्लाहु-अकबर, अल्लाहुम-म अहिल्लहू अलैना बिल-अमनि वल-ईमानि वस-सलामति वल-इस्लामि वत-तौफ़ीक़ि लिमा तुहिब्बु व तरज़ा रब्बी व रब्बुकल्लाह।

"अल्लाह सबसे बड़ा है। ऐ अल्लाह! इस चाँद को हमारे ऊपर अम्न व ईमान और सलामती व इस्लाम के साथ निकाल, और हमें उन कामों की तौफ़ीक़ दे जो तुझे पसन्द हैं और जिनसे तू ख़ुश होता है। (ऐ चाँद) मेरा और तुम्हारा रब अल्लाह है।" (हदीस : दारमी)

हर साल रमज़ान के महीने में जब जन्नत के दरवाज़े खोल दिए जाते हैं, जहन्नम के दावाज़े बन्द कर दिए जाते हैं और शैतानों को क़ैद कर दिया जाता है तो आसमान से एक पुकारनेवाला पुकारता है—

"ऐ भलाई के चाहनेवालो! आगे बढ़ो, और ऐ बुराई के चाहनेवालो! दूर रहो।" (हदीस : तिरमिज़ी)

इस मुबारक महीने में गुनहगार तौबा करता है और बेपरवाह व सरकशी अपनानेवाला अपने रब की तरफ़ पलटता है, और ग़ाफ़िल अपनी ग़फ़लत से बाज़ आता है और बहुत-से वे लोग जो अल्लाह से दूर होते हैं उसके सामने

हाज़िर हो जाते हैं, और रोज़ा व नमाज़ क़ायम करके अल्लाह की मग़फ़िरत और उसकी ख़ुशी के तलबगार हो जाते हैं। जैसा कि अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने रोज़ेदारों से वादा किया है—

"जिसने ईमान और अज्रो-सवाब की नीयत से रोज़ा रखा, उसके सारे पिछले गुनाह बख़्श दिए गए।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

रमज़ान के इस रूहानी सफ़र के फ़ौरन बाद एक दूसरा सफ़र शुरू होता है, जो एक ही वक़्त में माद्दी (भौतिक) और रूहानी (आध्यात्मिक) दोनों है। यह सफ़र हज का है जिसके महीने रमज़ान ख़त्म होते ही शुरू हो जाते हैं। अल्लाह फ़रमाता है—

"हज के महीने सबको मालूम हैं। जो शख़्स इन निश्चित महीनों में हज की नीयत करे उसे ख़बरदार रहना चाहिए कि हज के दौरान उससे कोई शहवानी अमल (काम-वासना), कोई बुरा काम, कोई लड़ाई-झगड़े की बात न होने पाए, और जो नेक काम तुम करोगे वह अल्लाह के इल्म में होगा। हज के सफ़र के लिए ज़ादे-राह (पाथेय) ले जाओ, और सबसे बेहतर ज़ादे-राह परहेज़गारी है। तो ऐ होशमन्दो! मेरी नाफ़रमानी से बचो।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-197)

गुज़रे हुए कुछ नेक लोगों और बुज़ुर्गों के बारे में आता है कि वे पाँच वक़्त की नमाज़ को 'रोज़ाना की मीज़ान (तराज़ू)', जुमे की नमाज़ को 'हफ़्ते की मीज़ान', रमज़ान के रोज़ों को 'साल की मीज़ान' और हज को 'उम्र की मीज़ान' ठहराते थे। इसलिए उनकी बड़ी ख़ाहिश होती थी कि उनका दिन सही और बेहतर तरीक़े से गुज़र जाए। और जब दिन गुज़र जाता तो उन्हें हफ़्ते की सलामती की फ़िक्र होती, और जब हफ़्ता गुज़र जाता है तो साल की फ़िक्र सताने लगती, फिर आख़िर में उम्र की सलामती की फ़िक्र होती।

इसी तरह इन इबादतों के साथ-साथ ज़कात की अदायगी का फ़र्ज़ भी है जो आम तौर पर साल गुज़र जाने पर और हर कटाई और फल तोड़ने के वक़्त अदा करना वाजिब होता है—

"और अल्लाह का हक़ अदा करो जब उसकी फ़सल काटो।"

(क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-141)

इस तरह मुसलमान वक़्त की रफ़्तार से होशियार रहता है और उसकी गरदिश पर निगाह रखता है ताकि ज़कात के फ़र्ज़ को ठीक वक़्त पर अदा कर सके।

वक़्त की ख़ासियतें

वक़्त की कुछ ख़ासियतें हैं जिनको जानना हमारे लिए ज़रूरी है, ताकि न्हीं की रौशनी में हम वक़्त का इस्तेमाल कर सकें।

. तेज़ रफ़्तारी

वक़्त की सबसे बड़ी खुसूसियत तेज़ रफ़्तारी है। यह बादलों की तरह ुज़रता है और हवा की तरह उड़ता है—चाहे वे खुशी और शादमानी के लम्हे ों या ग़म के मौक़े हों—हालाँकि कहा जाता है कि ख़ुशी के पल ज़्यादा तेज़ी े गुज़र जाते हैं, और ग़म के लम्हे धीरे-धीरे गुज़रते हैं—लेकिन हक़ीक़त में सा नहीं होता, बल्कि यह सिर्फ़ आदमी का अपना एहसास होता है।

इनसान की उम्र इस दुनिया में जितनी भी लम्बी हो जाए वह बहरहाल ोड़ी है। इसलिए कि हर हाल में उसे मरना है। अल्लाह रहम करे उस शायर र जिसने कहा—

وَاِذَا كَانَ اٰخِرُ الْعُمْرِ مَوْتًا
فَسَوَاءٌ قَصِيْرُهٗ وَالطَّوِيْلُ

व इज़ा का-न आख़िरुल-उमरि मौतन
फ़-सवाउन क़सीरुहू वत्तवीलु।

"और जब इनसानी उम्र का अंजाम मौत है, तो उसका थोड़ा या ज़्यादा होना बराबर है।"

मौत के वक़्त हर इनसान को अपनी ज़िन्दगी के महीने और साल कम ालूम होते हैं। उसे ऐसा महसूस होता है कि कुछ पल थे जो बिजली की फ़्तार से गुज़र गए।

हज़रत नूह (अलैहि॰) के बारे में बयान किया जाता है कि जब रूह क़ब्ज़ करने के लिए मौत का फ़रिश्ता आया तो उसने उनसे पूछा कि दुनिया को आपने कैसा पाया? उन्होंने फ़रमाया : उस घर की तरह जिसके दो दरवाज़े

हों, मैं एक दरवाज़े से दाख़िल हुआ और दूसरे से निकल आया।

हालाँकि नूह (अलैहि॰) एक हज़ार साल से ज़्यादा ज़िन्दा रहे।

यह वाक़िआ सही हो या ग़लत, मगर इससे इस हक़ीक़त की, जो पूरी तरह साबित है, यह तस्वीर साफ़ उभरकर सामने आती है कि मौत के वक़्त उम्रें थोड़ी-सी मालूम होती हैं। इसी तरह क़ियामत के दिन इनसान को उसके गुज़रे हुए वक़्त थोड़े दिखाए जाएँगे। अल्लाह फ़रमाता है—

"जिस दिन ये लोग उसे (क़ियामत) को देख लेंगे तो उन्हें यूँ महसूस होगा कि (दुनिया में या हालते-मौत में) ये बस एक दिन के पिछले पहर या अगले पहर तक ठहरे हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-79 नाज़िआत, आयत-46)

एक दूसरी आयत में है—

"और जिस दिन अल्लाह इनको इकट्ठा करेगा तो (यही दुनिया की ज़िन्दगी उन्हें ऐसी महसूस होगी) मानो ये सिर्फ़ घड़ी-भर के लिए आपस में जान-पहचान करने को ठहरे थे।"

(क़ुरआन, सूरा-10 यूनुस, आयत-45)

2. गया वक़्त फिर हाथ आता नहीं

यह वक़्त की दूसरी बड़ी ख़ुसूसियत है। इनसान की ज़िन्दगी का जो दिन, जो वक़्त, जो पल गुज़र जाता है वह दोबारा वापस नहीं आता और न इसका कोई बदल ही मुमकिन है।

हसन बसरी (रह॰) ने बड़े ही असरदार अन्दाज़ में इसकी ताबीर इस तरह की है—

"रोज़ाना फ़ज्र तुलूअ (उदय) होने के वक़्त दिन पुकारता है—ऐ आदम के बेटो! मैं एक नई मख़लूक़ (सृष्टि) हूँ और तुम्हारे अमल पर गवाह हूँ, तुम मुझसे ख़ूब फ़ायदा उठा लो, इसलिए कि मैं जाने के बाद क़ियामत तक नहीं लौटूँगा।"[1]

1. कुछ लोगों का ख़याल है कि यह हदीस है, हालाँकि यह हज़रत हसन बसरी (रह॰) का एक क़ौल (कथन) है।

इसी लिए हम देखते हैं कि शायर और अदीब बुढ़ापे की उम्र को पहुँचने के बाद दोबारा जवानी के दिनों के लौटने की तमन्ना करते हैं। एक शायर कहता है—

أَلَا لَيْتَ الشَّبَابَ يَعُوْدُ يَوْمًا
فَأُخْبِرُهُ بِمَا فَعَلَ الْمُشَيِّبُ!

अला लैतश-शबा-ब यऊदु यौमा
फ़-उख़बिरुहू बिमा फ़-अ-लल-मुशैय्यिबु!
"ऐ काश! जवानी किसी दिन लौट आती तो
मैं उसे बताता कि बुढ़ापे ने क्या ज़ुल्म ढाया है।"

एक दूसरा शायर उम्र के गुज़रने और दिन-रात के जाने और दोबारा न लौटने की तस्वीर इस तरह खींचता है—

وَمَا الْمَرْءُ إِلَّا رَاكِبٌ ظَهْرَ عُمْرِهِ
عَلَى سَفْرٍ يُفْنِيْهِ بِالْيَوْمِ وَالشَّهْرِ.
يَبِيْتُ وَيُضْحِيْ كُلَّ يَوْمٍ وَلَيْلَةٍ.
بَعِيْداً عَنِ الدُّنْيَا قَرِيْباً إِلَى الْقَبْرِ.

वमल-मरउ इल्ला राक़िबुन ज़ह-र उमरिही
अला सफ़रिन युफ़नीहि बिल-यौमि वश्शहरि
यबीतु व युज़ही कुल-ल यौमिन व लै-लतिन
बईदन अनिद्दुनया क़रीबन इलल-क़ब्रि।

"आदमी अपनी उम्र की पीठ पर सवार होकर एक ऐसे सफ़र पर चलता चला जा रहा है जो उसे दिन और महीने के ज़रिए से मौत के घाट उतार रहा है। वह रोज़ाना सुबह और शाम इस हाल में कर रहा है कि दुनिया से दूर हो रहा है और क़ब्र से क़रीब।"

3. वक़्त इनसान की सबसे क़ीमती पूँजी

चूँकि वक़्त बिजली की रफ़्तार की तरह होता है, और गुज़रा हुआ वक़्त फिर कभी वापस नहीं आता और न उसका कोई बदल होता है—इसलिए यह इनसान की सबसे बेहतर और क़ीमती पूँजी है। और इसकी ख़ूबी और क़द्रो-क़ीमत का अन्दाज़ा इस बात से होता है कि हर अमल और नतीजे के लिए वक़्त दरकार है बल्कि अस्ल में इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) और इजतिमाई (सामूहिक) दोनों हैसियत में इनसान का हक़ीक़ी सरमाया (पूँजी) वक़्त ही है।

वक़्त सिर्फ़ सोना ही नहीं है, जैसा कि कहावत मशहूर है, बल्कि हक़ीक़त यह है कि वह सोना, चाँदी, हीरे और जवाहिरात हर चीज़ से ज़्यादा क़ीमती चीज़ है। इमाम हसनुल-बन्ना शहीद (रह.) के मुताबिक़ : "वक़्त ही ज़िन्दगी है।" और हक़ीक़त भी यही है कि इनसान की ज़िन्दगी नाम है उस वक़्त का जिसे वह पैदाइश की पहली घड़ी से लेकर आख़िरी साँस तक गुज़ारता है।

हसन बसरी (रह.) फ़रमाते हैं—

"ऐ आदम के बेटे! तू दिनों का संग्रह है, जब एक दिन गुज़र गया
तो मानो कि ज़िन्दगी का कोई हिस्सा गुज़र गया।"

इस सिलसिले में क़ुरआन दो मौक़ों पर इनसान के अफ़सोस और पछतावे का ज़िक्र करता है, जब वह अपने वक़्त के बरबाद होने पर पछताएगा और उस वक़्त का पछताना काम न आएगा।

पहला मौक़ा

मौत के वक़्त, जब इनसान दुनिया को छोड़कर आख़िरत की तरफ़ रवाना होता है, उस वक़्त तमन्ना करता है कि काश! थोड़ी-सी मुहलत (ढील) दे दी जाती, और थोड़े वक़्त के लिए मौत टाल दी जाती तो मैं अपनी बिगड़ी बना लेता, और जो काम बिगड़ गया उसे सुधार लेता।

ऐसे लोगों का ज़िक्र क़ुरआन ने इन आयतों में किया है—

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! तुम्हारे माल और तुम्हारी औलादें तुमको अल्लाह की याद से ग़ाफ़िल (असावधान) न कर दें। जो लोग ऐसा करें वही घाटे में रहनेवाले हैं। जो रोज़ी हमने तुम्हें दी है उसमें से ख़र्च करो, इससे पहले कि तुममें से किसी की मौत का वक़्त आ जाए और उस वक़्त वह कहे कि ऐ मेरे रब! क्यों न तूने मुझे थोड़ी मुहलत और दे दी कि मैं सदक़ा देता और नेक लोगों में शामिल हो जाता।" (क़ुरआन, सूरा-63 मुनाफ़िक़ून, आयतें-9,10)

इस फ़िज़ूल तमन्ना का यक़ीनी जवाब यह है—

"अल्लाह किसी शख़्स को हरगिज़ और मुहलत नहीं देता जब उसके अमल की मुहलत पूरी होने का वक़्त आ जाता है, और जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उससे बा-ख़बर है।"

(क़ुरआन, सूरा-63 मुनाफ़िक़ून, आयत-11)

दूसरा मौक़ा

आख़िरत में जब सबका पूरा-पूरा हिसाब चुका दिया जाएगा, हर आदमी को अपनी कमाई का भरपूर बदला मिल जाएगा, जन्नतवाले जन्नत में दाख़िल हो जाएँगे और दोज़ख़ी दोज़ख़ में डाल दिए जाएँगे, उस वक़्त दोज़ख़वाले तमन्ना करेंगे कि काश! एक बार फिर वे दुनिया में भेज दिए जाते तो नए सिरे से नेक अमल की शुरुआत करते—मगर अफ़सोस कि उनकी यह ख़ाहिश पूरी न होगी, इसलिए कि अमल का वक़्त ख़त्म हो गया और बदले और सज़ा का वक़्त आ गया। ऐसे लोगों का ज़िक्र अल्लाह ने इस तरह किया है—

"और जिन लोगों ने कुफ़्र (सत्य का इनकार) किया उनके लिए दोज़ख़ की आग है। न उनका काम तमाम कर दिया जाएगा कि मर जाएँ और न उनके लिए जहन्नम की आग में कोई कमी की जाएगी। इस तरह हम बदला देते हैं हर उस शख़्स को जो कुफ़्र करनेवाला हो। वे वहाँ चिल्ला-चिल्लाकर कहेंगे कि ऐ हमारे रब! हमें यहाँ से निकाल ले ताकि हम नेक काम करें, उन कामों से भिन्न जो

हम पहले करते रहे थे। (उन्हें जवाब दिया जाएगा) क्या हमने तुमको इतनी उम्र न दी थी जिसमें कोई सबक़ लेना चाहता तो सबक़ ले सकता था? और तुम्हारे पास ख़बरदार करनेवाला भी आ चुका था, अब मज़ा चखो। ज़ालिमों का यहाँ कोई मददगार नहीं है।"

(क़ुरआन, सूरा-35 फ़ातिर, आयतें-36,37)

इस झिंझोड़ देनेवाले सवाल से उनकी सारी आरज़ुएँ मिट्टी में मिल जाएँगी।

उन लोगों से इस सवाल का कोई जवाब न बन पड़ेगा—

"क्या हमने तुमको इतनी उम्र नहीं दी थी कि जिसमें अगर कोई सबक़ लेना चाहता तो सबक़ ले सकता था? और तुम्हारे पास ख़बरदार करनेवाला भी आ चुका था।"

(क़ुरआन, सूरा-35 फ़ातिर, आयत-37)

अल्लाह जिससे जो काम लेना चाहता है उसी के मुताबिक़ उसे उम्र और वसाइल (संसाधन) देता है और याददिहानी भी कराता है। इसके बाद भी कोई इस काम में ग़फ़लत या कोताही का गुनाह करता है तो वह सख़्त पकड़ करता है और किसी क़िस्म का बहाना उसके यहाँ क़बूल होने के क़ाबिल नहीं होता। ख़ास तौर पर जिसने साठ साल की उम्र पाई हो उसके लिए उम्र का इतना बड़ा हिस्सा ग़ाफ़िल को होशियार होने, भटके हुए को अल्लाह की तरफ़ पलटने और गुनहगार को तौबा करने की तरफ़ मोड़ने के लिए काफ़ी है। हदीस में नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

"अल्लाह जिसको साठ साल की मुहलत देता है, उसके उज़्र (माफ़ी) क़बूल नहीं करता।" (हदीस : बुख़ारी)

वक़्त के मामले में मुसलमान की ज़िम्मेदारी

जब वक़्त की इतनी ज़्यादा अहमियत है, यहाँ तक कि वक़्त ही को ज़िन्दगी से ताबीर किया गया है, तो एक मुसलमान पर वक़्त के एतिबार से बड़ी ज़िम्मेदारियाँ आती हैं, इसलिए उसे चाहिए कि उन ज़िम्मेदारियों को समझे और हमेशा उन्हें अपने सामने रखे और इल्म व अक़्ल के दायरे से आगे बढ़कर उन्हें अमल में लाने की कोशिश करे।

वक़्त से फ़ायदा उठाने की ललक

एक मुसलमान पर वक़्त के ताल्लुक़ से सबसे पहली ज़िम्मेदारी यह होती है कि वह उसी तरह उसकी हिफ़ाज़त करे जिस तरह अपने जान-माल की हिफ़ाज़त करता है—बल्कि उससे भी ज़्यादा—उसे अपने वक़्त से फ़ायदा उठाने की ललक हो, अपना वक़्त ऐसे कामों में लगाए जिसका फ़ायदा उसे दुनिया और आख़िरत दोनों जगह पर मिले।

हमारे बुज़ुर्ग अपने वक़्त से फ़ायदा उठाने के मामले में सबसे ज़्यादा लालायित रहते थे इसलिए कि वे इसकी क़द्र व क़ीमत से अच्छी तरह वाक़िफ़ थे। हसन बसरी (रह़.) फ़रमाते हैं—

> "मैंने ऐसे लोग देखे हैं जो तुम्हारे धन-दौलत के लालच से ज़्यादा अपने वक़्त के लालची थे।"

इससे अन्दाज़ा होता है कि इन बुज़ुर्गों की सबसे बड़ी ख़ाहिश यह होती थी कि अपने वक़्त को लगातार अमल के ज़रिए से हमेशा आबाद रखें और उसके बेफ़ायदा बरबाद होने से होशियार रहें। हज़रत उमर-बिन-अब्दुल-अज़ीज़ (रह़.) फ़रमाते थे कि "रात और दिन तुम्हारे लिए काम कर रहे हैं और तुम उनमें काम करो।"

उन बुज़ुर्गों के नज़दीक वक़्त की बरबादी अल्लाह की नाराज़गी की पहचान थी। उनका कहना था कि वक़्त दो-धारी तलवार है जिसकी काट दो-तरफ़ा है, अगर तुमने उसे अपने हक़ में इस्तेमाल न किया तो इसके मानी

यह हैं कि वह तुम्हारे ख़िलाफ़ इस्तेमाल हुआ। इसी लिए वे लोग हमेश अच्छे-से-अच्छे की तरफ़ आगे बढ़ने की कोशिश करते रहते थे, और उनमें का हर शख़्स यह चाहता था कि उसका आज बीते हुए कल से बेहतर हो और आनेवाला कल आज से बेहतर हो। उन्हीं बुज़ुर्गों में से किसी का कथन है कि जिसका आज कल जैसा रहा वह घाटे में है और जिसका आज उसके कल से बदतर रहा वह लानत-मलामत का हक़दार है।

उन बुज़ुर्गों की यह बड़ी सख़्त ख़ाहिश होती थी कि उनका कोई दिन और उस दिन का कोई पल भी ऐसा न गुज़रे जिसमें उन्होंने कोई नफ़ाबख़्श इल्म हासिल न किया हो या कोई नेक अमल और नफ़्स (मन) से लड़ाई न की हो या अल्लाह के बन्दों को किसी क़िस्म का फ़ायदा न पहुँचाया हो।

वे तेज़ी से गुज़रती हुई अपनी उम्र के सिलसिले में फ़िक्रमन्द होते थे कि वह यूँ ही गुज़र जाए, ग़ुबार की तरह उड़कर ख़त्म हो जाए या झाग की तरह सूख जाए और उन्हें इसका इल्म और शुऊर भी न हो।

वे लोग इस बात को वक़्त की नाक़द्री मानते थे कि उनका कोई पल इस हाल में गुज़रे कि उन्होंने कोई भलाई का काम न किया हो।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि.) फ़रमाते हैं कि मैं सबसे ज़्यादा अपने उस दिन पर शर्मिन्दा होता हूँ जिसका सूरज डूब जाता है और मेरी उम्र का एक दिन कम हो जाता है, मगर उसमें मेरे नेक अमल का कोई इज़ाफ़ा नहीं होता।

एक दूसरे बुज़ुर्ग फ़रमाते हैं कि जब मेरे ऊपर कोई ऐसा दिन गुज़रता है जिसमें किसी ऐसे इल्म का इज़ाफ़ा नहीं होता जो मुझे अल्लाह से क़रीब कर दे तो मैं उस दिन को अपने लिए बे-बरकत मानता हूँ।

एक हकीम का क़ौल (कथन) है कि जिसने अपनी उम्र का कोई दिन इस हाल में गुज़ारा कि न तो किसी हक़ (सत्य) का फ़ैसला किया, न कोई फ़र्ज़ अदा किया, न बड़ाई और बुज़ुर्गी की बुनियाद रखी, न कोई तारीफ़ के क़ाबिल काम किया और न कोई इल्म हासिल किया तो उसने अपने उस दिन के साथ बदसुलूकी की और अपने ऊपर ज़ुल्म किया।

वक़्त काटनेवाला

एक तरफ़ हम अपने बुज़ुर्गों को देखते हैं कि वे वक़्त के ताल्लुक़ से बड़े ही लोभी थे, इसलिए कि उन्हें उसकी हक़ीक़ी क़द्रो-क़ीमत का बहुत अच्छी तरह अन्दाज़ा था और दूसरी तरफ़ हम आज मुसलमानों को देखते हैं कि वे वक़्त को इतनी बेपरवाही से बरबाद कर रहे हैं कि उनकी यह वक़्त की बरबादी फ़ुज़ूलख़र्ची से बढ़कर ज़ुल्म व ज़्यादती तक जा पहुँची है।

हालाँकि सच तो यह है कि वक़्त को बरबाद करने की बेवक़ूफ़ी माल के बरबाद करने की बेवक़ूफ़ी से कहीं ज़्यादा संगीन है। और ये वक़्त को बरबाद करनेवाले और उसके साथ ज़ुल्म करनेवाले लोग उन लोगों के मुक़ाबले में ज़्यादा सज़ा के हक़दार हैं जो माल बरबाद करनेवाले हैं। इसलिए कि अगर माल बरबाद हो जाए तो उसका बदल मुमकिन है, मगर वक़्त की बरबादी का कोई बदल नहीं है।

आजकल मजलिसों, चौपालों और क्लबों में हर एक की ज़बान से बस एक ही वाक्य सुनने को मिलता है कि 'वक़्त काट रहे हैं!' जिसे आम तौर पर लोग 'वक़्त-गुज़ारी' का नाम दे रहे हैं। हम देखते हैं कि ये ज़ालिम और वक़्त की हक़ीक़त से बेपरवाह लोग घंटों शतरंज, ताश के पत्तों और दूसरे खेलों में गुज़ार देते हैं। उन्हें इसकी परवाह नहीं होती कि ये खेल जाइज़ हैं या नहीं और इसी हाल में वे नमाज़, अल्लाह की याद और दूसरी दीनी और दुनियावी ज़िम्मेदारियों से बेपरवाह होकर बैठे रहते हैं। अगर आप उनसे पूछें कि क्या कर रहे हैं? तो उनका साफ़ जवाब होगा कि 'वक़्त काट रहे हैं।' हालाँकि इन नादानों को मालूम नहीं कि वे वक़्त नहीं, बल्कि हक़ीक़त में अपने-आपको काट रहे हैं। यह हक़ीक़त में सुस्त-रफ़्तार ख़ुदकुशी (आत्महत्या) है जिसे सरेआम किया जा रहा है, मगर कोई इसपर पूछगच्छ करनेवाला नहीं है। लेकिन जिसे इसकी संगीनी का एहसास ही न हो वह इसपर पूछगच्छ कैसे कर सकता है!

ख़ाली वक़्त को ग़नीमत जानना

फ़ुरसत और ख़ाली वक़्त की नेमत भी उन नेमतों में से एक है जिनसे

अकसर लोग ग़ाफ़िल हैं, और उनकी क़द्रो-क़ीमत से बिलकुल नावाक़िफ़ हैं इसी लिए सही मानी में उनका शुक्र अदा नहीं कर पाते हैं।

इमाम बुख़ारी (रह॰) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰) से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "अल्लाह की नेमतों में से दो नेमतें ऐसी हैं कि उनमें बहुत-से लोग धोखा खा जाते हैं। एक 'तन्दुरुस्ती' और दूसरी 'फ़राग़त' (ख़ाली वक़्त)।"

यानी वक़्त पर इनकी क़द्र नहीं करते हैं, और जब ये नेमतें उनसे छिन जाती हैं तो अफ़सोस से हाथ मलते रह जाते हैं।

यह क़ुरआन और हदीस के उन बहुत-सी वाज़ेह हिदायतों के ख़िलाफ़ नहीं है जो इनसान को रोज़ी हासिल करने और रोज़गार की तलाश पर उभारती हैं, हाँ ये चीज़ें उस वक़्त ख़िलाफ़ होंगी जब इनसान को दुनियावी ज़िन्दगी और उसके मुतालबे में डुबोकर रख दें, और उसे अल्लाह के हक़्क़ों को अदा करने से रोक दें।

ग़बन अस्ल में ख़रीदो-फ़रोख़्त और तिजारत (व्यापार) में होता है। अल्लामा मुनावी (रह॰) के कहने के मुताबिक़ यहाँ इनसान को ताजिर (व्यापारी) से तशबीह (उपमा, तुलना) दी गई है और सेहत और फ़राग़त को पूँजी या सरमाया कहा गया है। इसलिए कि ये दोनों चीज़ें फ़ायदा उठाने की चीज़ों में से हैं, और यह इनसान की कामयाबी की शुरुआती कड़ियाँ हैं—इसलिए जो शख़्स अल्लाह के साथ इताअत और फ़रमाँबरदारी का मामला करेगा वह फ़ायदे में रहेगा और जो शैतान की पैरवी करेगा वह अपनी पूँजी को बरबाद कर देगा।

एह दूसरी हदीस जिसमें "पाँच चीज़ों को पाँच चीज़ों से पहले ग़नीमत जानने का ज़िक्र है, उसमें एक यह भी है कि अपने ख़ाली वक़्तों को मशग़ूलियत (व्यस्तता) से पहले ग़नीमत जानो।"

(हदीस : हाकिम, नसई, बैहक़ी)

वक़्त कभी ख़ाली नहीं रहता। या तो भलाई हो रही होती है या बुराई।

नो शख़्स अपने-आपको सही कामों में मशग़ूल नहीं रखता, वह बुरे कामों में मसरूफ़ हो जाता है। इसलिए तारीफ़ के क़ाबिल हैं वे लोग जिन्होंने अपने फ़ुरसत के लम्हों को भलाई और सुधार के कामों में इस्तेमाल किया। और हलाकत और बरबादी हो उन लोगों के लिए जिन्होंने अपने वक़्त को फ़ितना और फ़साद से भर दिया।

कुछ नेक लोगों और बुज़ुर्गों का कहना है कि फ़ुरसत का वक़्त एक बहुत बड़ी नेमत है, लेकिन जब बन्दा इस नेमत की नाक़द्री करके अपने ऊपर मन की ख़्वाहिश का दरवाज़ा खोल लेता है, और शहवानी ख़्वाहिशों के पीछे बेतहाशा भागने लगता है, तो नतीजा यह होता है कि अल्लाह उसपर बेचैनी और बेसुकूनी तारी कर देता है। और उसके दिल का इत्मीनान छीन लेता है।

यही वजह है कि हमारे बुज़ुर्ग इस बात को पसन्द नहीं करते थे कि आदमी बेकार बैठा रहे—न वह दीन का काम करे और न दुनिया का—इस हालत में यह ख़ाली वक़्त बजाय नेमत के उस शख़्स के लिए अज़ाब बन जाता है और इसमें मर्द और औरत सब एक जैसे हैं। चुनांचे मशहूर कहावत है कि ख़ाली वक़्त मर्दों के लिए ग़फ़लत में पड़ने की वजह है और औरतों के लिए बेहयाई में पड़ने की वजह। मिस्र के अज़ीज़ की बीवी का यूसुफ़ (अलैहि॰) पर दीवानगी की हद तक फ़िदा होना और उन्हें अपने चाल में फँसाने की कोशिश करना सिर्फ़ उसकी बेकारी और ख़ाली रहने का नतीजा था।

इस ख़ाली वक़्त की संगीनी उस वक़्त और ज़्यादा हो जाती है जब उसके साथ जवानी भी जमा हो जाए और उसके पास जिन्सी ताक़त और आमदनी के साधन नुमायाँ हों, यानी वह माली क़ुदरत हासिल हो जो इनसान के लिए हर पसन्दीदा चीज़ को हासिल करना मुमकिन और आसान बना दे।

भलाई के कामों में आगे बढ़ जाना

एक मुसलमान की शान यह है कि वह अपने वक़्त को जहाँ तक

मुमकिन हो सके ख़ैर और भलाई के कामों में लगाए। और इस सिलसि में किसी भी तरह की सुस्ती, लापरवाही और टाल-मटोल न करे।

इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने अपनी उम्मत को जो ज़िक्र और दुआ सिखाई हैं उनमें से सुबह और शाम के लिए यह दुआ है—

اَللّٰهُمَّ إِنِّيْ أَعُوْذُبِكَ مِنَ الْهَمِّ وَالْحُزْنِ وَأَعُوْذُبِكَ مِنَ الْعَجْزِ وَالْكَسْلِ.

अल्लाहुम-म इन-नी अ-ऊज़ुबि-क मिनल-हमूमि वल-हुज़नि व अ-ऊज़ुबि-क मिनल-अजज़ि-वल कस्ल।

"ऐ अल्लाह, मैं तेरी पनाह माँगता हूँ रंज व ग़म से, और तेरी पनाह माँगता हूँ सुस्ती और काहिली से।" (हदीस : तिरमिज़ी, नसई)

यही वजह है कि क़ुरआन ख़ैर और भलाई के कामों में जल्दी करने क हुक्म देता है, इससे पहले कि दूसरी मसरूफ़ियतें और परेशानियाँ इन कामो से ग़ाफ़िल और बेपरवाह कर दें। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"हर एक के लिए एक रुख़ (दिशा) है, जिसकी तरफ़ वह मुड़ता है। तो तुम भलाइयों की तरफ़ पहल करो। जहाँ भी तुम होगे अल्लाह तुम्हें पा लेगा।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-148)

अल्लाह तआला किताबवालों (यहूदियों और ईसाइयों) और उनकी किताब (तौरात और इंजील) पर टिप्पणी करते हुए फ़रमाता है—

"अगर तुम्हारा ख़ुदा चाहता तो तुम सबको एक उम्मत (समुदाय) बना सकता था। लेकिन उसने यह इसलिए नहीं किया कि जो कुछ उसने तुम लोगों को दिया उसमें तुम्हारी आज़माइश करे, इसलिए भलाइयों में एक दूसरे से आगे बढ़ जाने की कोशिश करो। आख़िरकार तुम लोगों को अल्लाह की तरफ़ पलटकर जाना है।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-48)

अल्लाह तआला जन्नत और उसकी नेमतों की तरफ़ रग़बत दिलाते हुए

रमाते हैं–

"दौड़कर चलो उस रास्ते पर जो तुम्हारे रब की बख़्शिश और उसकी जन्नत की तरफ़ जाता है, जिसकी वुस्अत (विस्तार) ज़मीन और आसमानों जैसी है, जो अल्लाह का डर रखनेवालों के लिए तैयार की गई है।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-133)

एक दूसरी आयत में है–

"एक-दूसरे से आगे बढ़ने की कोशिश करो अपने रब की मग़फ़िरत (क्षमा) और उस जन्नत की तरफ़ जिसकी वुसूअत (विस्तार) ज़मीन और आसमानों जैसी है। (क़ुरआन, सूरा-57 हदीद, आयत-21)

इन आयतों में अल्लाह ने अपनी मग़फ़िरत और जन्नत के हासिल करने ; लिए जल्दी करने और एक-दूसरे से आगे बढ़ जाने का हुक्म देकर अस्ल उनके असबाब यानी ईमान, तक़वा (परहेज़गारी) और नेक अमल के लिए क-दूसरे से आगे बढ़ने की ताकीद की है। इन कामों में मुक़ाबला करने और क-दूसरे से आगे बढ़ जाने का जज़्बा ज़रूरी भी है और पसन्दीदा भी–

"और इन्हीं कामों में मुक़ाबला करनेवालों को मुक़ाबला करना चाहिए।" (क़ुरआन, सूरा-83 मुतफ़्फ़िफ़ीन, आयत-26)

अल्लाह अपने कुछ चुने हुए नबियों (अलैहि॰) की तारीफ़ करते हुए रमाता है–

"ये लोग नेकी के कामों में दौड़-धूप करते थे, और हमें पूरे लगाव और डर के साथ पुकारते थे, और हमारे आगे झुके हुए थे।"

(क़ुरआन, सूरा-21 अम्बिया, आयत-90)

और अह्ले-किताब (किताबवालों) के नेक लोगों की तारीफ़ अल्लाह ने न लफ़्ज़ों में की है–

"ये लोग अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखते हैं, नेकी का हुक्म देते हैं, बुराइयों से रोकते हैं और भलाई के कामों में सरगर्म रहते हैं। ये नेक (अच्छे) लोग हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-114)

इसी तरह मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) की निन्दा करते हुए अल्लाह ने फ़रमाया है—

"जब ये नमाज़ के लिए उठते हैं तो कसमसाते हुए उठते हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-142)

एक दूसरी जगह फ़रमाया है—

"ये नमाज़ के लिए आते हैं तो कसमसाते हुए आते हैं और अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करते हैं तो बेदिली से ख़र्च करते हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-54)

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) भी नेक कामों में जल्दी करने का हुक्म देते थे। एक बार आप (सल्ल॰) ने नेक कामों में देर न करने और उन्हें जल्द पूरा करने की नसीहत करते हुए कहा—

"लगता है तुम तो बस सरकश (नाफ़रमान, मग़रूर, बाग़ी) बना देनेवाली मालदारी के इन्तिज़ार में हो, या सब कुछ भुला देनेवाली मुहताजी के, या बरबाद कर देनेवाली बीमारी के, या सठिया देनेवाली बड़ी उम्र में पहुँच जाने के, या काम तमाम कर देनेवाली मौत के, या दज्जाल के जो आँखों से ओझल एक ऐसी बुरी चीज़ है जिसका इन्तिज़ार किया जा रहा है, या फिर क़ियामत के जो सबसे बड़ी आफ़त है और सबसे तल्ख़ घड़ी है।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

एक और हदीस में अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) फ़रमाते हैं—

"जो शख़्स रात के आख़िरी हिस्से में दुश्मन की ग़ारतगरी का ख़ौफ़ रखता है वह रात के शुरू हिस्से में चल पड़ता है, और जो रात के शुरू हिस्से में चल देता है वह मंज़िल पर पहुँच जाता है। ख़बरदार! अल्लाह का सामान या मताअ (पूँजी) बहुत क़ीमती है। ख़बरदार हो जाओ, अल्लाह की पूँजी या सामान जन्नत है।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

गुज़रे हुए वक़्त से सबक़

मुसलमान को चाहिए कि रात-दिन के आने-जाने से अपने लिए सबक़ और इबरत हासिल करे, इसलिए कि रात-दिन हर नई चीज़ को पुरानी बना देते हैं, हर दूरी को क़रीब कर देते हैं, उम्र को समेट देते हैं, छोटों को बूढ़ा बना देते हैं और बूढ़ों को मौत के घाट उतार देते हैं।

बेशक रात-दिन के आने-जाने में बड़ी इबरत (शिक्षा) का सामान है। इसलिए मुसलमान के लिए ज़रूरी है कि वह उन चीज़ों से शिक्षा हासिल करे और ग़ौरो-फ़िक्र से काम ले। हर दिन जो गुज़रता है, बल्कि हर गुज़रनेवाले पल में इस कायनात (सृष्टि) और इनसानी ज़िन्दगी के अन्दर कोई-न-कोई हादसा ज़रूर पेश आता है। उनमें से कुछ नज़र आते हैं और कुछ नहीं, कुछ की जानकारी होती है और कुछ की नहीं। कितनी ज़मीनें ज़िन्दा होती हैं और कितने दाने उगते हैं, कितने पौधे लहलहाते हैं, कितने फूल फल बनते हैं और कितने फल तोड़ लिए जाते हैं और फ़सलें सूखकर भुस बन जाती हैं और हवा उन्हें उड़ाए लिए फिरती है, या माँ के गर्भ में कितने भ्रूण बनते हैं, कितने बच्चे पैदा होते हैं, बच्चे जवान होते हैं और जवान अधेड़ हो जाते हैं, अधेड़ बूढ़ा होता है और बूढ़ा मर जाता है।

इसी तरह आसमान और ज़मीन की गरदिश के साथ-साथ लोगों के हालात में भी तब्दीलियाँ पेश आती रहती हैं। मिसाल के तौर पर आसानी-दुश्वारी, मालदारी-मुहताजी, सेहत-बीमारी, ख़ुशी-ग़म, तंगी-बहुतात और खुशहाली-बदहाली। कहने का मतलब यह कि इन सब चीज़ों में अक़्लमन्दों के लिए निशानी, दिलवालों के लिए याददिहानी और समझ रखनेवालों के लिए इबरत का सामान है। हाँ, जो शख़्स अक़्लमन्दों की सोच से, दिलवालों के एहसास से और नज़रवालों की नज़र से महरूम हो गया हो उसके लिए यह ज़िन्दगी का सारा कारख़ाना बे-मक़सद है। अल्लाह फ़रमाता है—

> "आसमानों और ज़मीन की पैदाइश (रचना) में और रात और दिन के बारी-बारी से आने में होशमन्दों के लिए बहुत-सी निशानियाँ हैं।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-190)

एक और आयत में है—

"रात और दिन का उलट-फेर अल्लाह ही कर रहा है। इसमें एक सबक़ (शिक्षा) है आँखें रखनेवालों के लिए।"

(क़ुरआन, सूरा-24 नूर, आयत-44)

तंज़ीमे-वक़्त (समय-प्रबंधन)

मुसलमान को चाहिए कि वह अपनी ज़िम्मेदारियों और दूसरे कामों के बीच अपने वक़्त को सुव्यवस्थित और क्रमबद्ध करे, वह काम चाहे दीनी हो या दुनियावी। और जो काम जिस अहमियत और जिस तरतीब का हो उसको उसी अहमियत और तरतीब से पूरा करना चाहिए। कुछ कामों का वक़्त सुनिश्चित होता है इसलिए उन्हें उसी समय कर लेना चाहिए, और कुछ का नहीं होता है, इसलिए उन कामों को कभी भी पूरा किया जा सकता है। इसी तरह एक काम तुरन्त करना होता है तो उसको तुरन्त करना चाहिए। वक़्त के इस मैनेजमेन्ट और तरतीब का फ़ायदा यह होता है कि कई कामों के बीच टकराव का अन्देशा ख़त्म हो जाता है।

नबी (सल्ल॰) ने इबराहीम (अलैहि॰) के सहीफ़े की कुछ तालीमात (शिक्षाएँ) इस तरह बयान की हैं—

"अक़्लमन्द आदमी को चाहिए कि वह अपने वक़्त को चार हिस्सों में बाँट दे। एक हिस्सा अल्लाह की तारीफ़ और उससे दुआ के लिए, दूसरा नफ़्स की जाँच-पड़ताल के लिए, तीसरा अल्लाह की बनाई हुई चीज़ों में ग़ौरो-फ़िक्र करने के लिए और चौथा हिस्सा अपने खाने-पीने की ज़रूरतों के लिए ख़ास करे।"

(हदीस : इब्ने-हिब्बान, हाकिम)

वक़्त के बँटवारे और व्यवस्था की सबसे ज़्यादा ज़रूरत उन लोगों को है जिनके पास बहुत सारी ज़िम्मेदारियाँ हैं और उनके सिर पर कामों का बहुत ज़्यादा बोझ रहता है ताकि उन्हें इस बात का एहसास हो कि ज़िम्मेदारियाँ उनके वक़्त से बढ़ी हुई हैं।

जब आदमी अपने वक़्त को तरतीब दे रहा हो तो उसके लिए ज़रूरी है

के एक हिस्सा अपने आराम और राहत के लिए भी रखे। इसलिए कि नफ़्स (मन) देर तक मेहनत करने से उकता जाता है और दिल भी थक जाता है, जेस तरह जिस्म थक जाता है। इसलिए वक़्त का कुछ हिस्सा जाइज़ खेल और मनोरंजन के लिए भी निकालना ज़रूरी है। हज़रत अली (रज़ि॰) का कथन है कि थोड़े-थोड़े वक़्फ़े से दिल को आराम पहुँचाते रहो, इसलिए कि दिल को जब मजबूर किया जाता है तो वह अन्धा हो जाता है।

किसी मुसलमान के लिए यह मुनासिब नहीं है कि वह अपने को काम में इतना थका दे कि काम करने की ताक़त कमज़ोर पड़ जाए और उसके काम करने की रफ़्तार का सिलसिला टूट जाए। और इस तरह वह अपने वुजूद, अपने बीवी-बच्चों और अपने समाज के अधिकारों को पामाल कर बैठे। चाहे यह थकान अल्लाह की इबादत, रोज़ा-नमाज़ और फ़रमाँबरदारी और परहेज़गारी ही की शक्ल में क्यों न हो।

नबी (सल्ल॰) ने जब अपने सहाबा को रात में आप (सल्ल॰) के पीछे बहुत ज़्यादा नमाज़ पढ़ने में मुक़ाबला करते देखा तो फ़रमाया—

> "उतना ही करो जितनी तुममें ताक़त हो, इसलिए कि अल्लाह तआला नहीं उकताता, यहाँ तक कि तुम लोग उकता जाओ। अल्लाह के नज़दीक बेहतर अमल वे हैं जिनकी पाबन्दी की जाए, चाहे वे थोड़े ही हों।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

एक दूसरे मौक़े पर आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "बेशक दीन आसान है। जो कोई दीन के साथ सख़्ती का मामला करेगा, दीन उसपर ग़ालिब आ जाएगा। बीच का रास्ता इख़्तियार करो और वह अमल (काम) करो जो दीन की रूह (आत्मा) से बहुत क़रीब हो। और थोड़ा-सा अमल भी लगातार किया करो।"
>
> (हदीस : बुख़ारी, नसई)

एक बार नबी (सल्ल॰) ने क़िरअत, क़ियाम और रोज़े में बहुत ज़्यादा मशक़्क़त करनेवालों को सन्तुलन और एतिदाल की नसीहत करते हुए फ़रमाया—

"बेशक तुम्हारे बदन का तुमपर हक़ है और तुम्हारे घरवालों का तुमपर हक़ है और तुम्हारे मिलने-जुलनेवालों का तुमपर हक़ है।"

(हदीस : बुख़ारी)

एक बार नबी (सल्ल०) ने इबादत, परहेज़गारी और नेक कामों में हद से बढ़नेवाली एक जमाअत से कहा–

"मैं तुमसे ज़्यादा अल्लाह से डरनेवाला हूँ और उसका तक़वा इख़्तियार करनेवाला हूँ, लेकिन मैं रात को क़ियाम (अल्लाह के सामने खड़ा होना) भी करता हूँ और सोता भी हूँ, रोज़े रखता हूँ और नहीं भी रखता हूँ, औरतों से शादी करता हूँ, तो जो कोई मेरे तरीक़े को नापसन्द करेगा उसका मुझसे कोई ताल्लुक़ नहीं।"

(हदीस : बुख़ारी)

यही नबी (सल्ल०) की सुन्नत है और आप (सल्ल०) की ज़िन्दगी का तरीक़ा है। यह माद्दियत (भौतिकता) और रूहानियत (अध्यात्म) के बीच सन्तुलन और एतिदाल का रास्ता है और मन की ख़ाहिश और अल्लाह के हक़ों के बीच बेहतरीन सन्तुलन है। इसी लिए इस्लाम की निगाह में इनसान के लिए कोई हर्ज नहीं है कि वह अपने वक़्त का कुछ हिस्सा खेल-कूद में गुज़ारे और हलाल और पाक चीज़ों के ज़रिए से अपने मन (नफ़्स) को आराम पहुँचाए।

यही वजह है कि जब नबी (सल्ल०) ने अपने एक सहाबी हज़रत हंज़ला (रज़ि०) के बारे में सुना कि वे अपने-आप पर मुनाफ़िक़ होने का इलज़ाम सिर्फ़ इस वजह से लगा रहे हैं कि उनकी जो हालत आप (सल्ल०) की मजलिस में होती थी वह अपने घर और बीवी-बच्चों में नहीं होती थी। यह सुनकर आप (सल्ल०) ने उनसे फ़रमाया–

"ऐ हंज़ला! अगर तुम लोग उस हालत पर बाक़ी रहो जो मेरी मजलिस में होती है तो तुमसे फ़रिश्ते रास्तों में मुसाफ़ा करें, लेकिन ऐ हंज़ला! वक़्फ़े-वक़्फ़े से (ठहर-ठहरकर)...।" (हदीस : मुस्लिम)

यह है एक मुसलमान की शान कि कुछ वक़्त अपने रब के लिए ख़ास

रे और कुछ वक़्त अपने दिल के लिए। एक क़िस्सा बहुत मशहूर है कि समई ने एक गाँव में किसी औरत को देखा कि उसके हाथ में तसबीह है ार वह खड़ी सुर्मा लगा रही है और बनाव-शृँगार कर रही है। इसपर समई ने उससे पूछा कि इन दोनों चीज़ों में क्या ताल्लुक़ है? यानी उसे यह ात अजीब मालूम हुई कि एक औरत जो तसबीह और ज़िक्र करनेवाली है, ाथ ही बनने-सँवरने में लगी हुई है। उसके सवाल पर उस औरत ने जवाब एक शेर कहा जिसके मानी हैं–

وَلِلّٰهِ مِنِّیْ جَانِبٌ لَا اُضِیْعُهٗ
وَلِلَّهْوِ مِنِّیْ وَالْبِطَالَةِ جَانِبٌ

व लिल्लाहि मिन्नी जानिबुन ला उज़ीउहू
व लिल्लहवि मिन्नी वल-बितालति जानिबुन

"मेरे मामूलात (रोज़ के कामों) में अल्लाह के लिए एक ख़ास पहलू है जिससे मैं ध्यान नहीं हटाती हूँ और इसी तरह तफ़रीह और फ़राग़त (इत्मीनान) के लिए भी एक पहलू है।"

असमई ने कहा कि मैं समझ गया कि यह कोई नेक औरत है और ाौहरवाली है जिसके लिए बन-सँवर रही है।

़र काम का एक वक़्त है

मुसलमान को चाहिए कि वह वक़्त की माँगों को पहचाने कि उसकी ़बान व दिल और जिस्म के दूसरे हिस्से किस वक़्त किस अमल की माँग कर रहे हैं। इसकी तलाश में रहे और इसको सही वक़्त पर अंजाम देने की कोशिश करे ताकि मुनासिब तरीक़े से अपने मक़सद को हासिल कर सके और अल्लाह के नज़दीक क़बूलियत का दरजा भी पा सके।

इसी लिए हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) ने हज़रत उमर (रज़ि॰) को अपना उत्तराधिकारी बनाते हुए यह वसीयत की थी कि जान लो! अल्लाह के लिए

कुछ काम दिन में करने के हैं जिनको वह रात में क़बूल नहीं करता और कुछ काम रात में करने के हैं जिनको वह दिन में क़बूल नहीं करता।

इसलिए अहम बात यह नहीं है कि इनसान जब चाहे जो अमल करे, बल्कि अहम और ज़रूरी बात यह है कि सही काम सही वक़्त पर करे। इसी बात को ज़ेहन में बिठाने के लिए अल्लाह ने बहुत-सी इबादतों और फ़र्ज़ों को वक़्त के साथ सुनिश्चित कर दिया है, जिसमें फेर-बदल और देर करना जाइज़ नहीं है। और यह कि कोई अमल या काम न अपने तय वक़्त से पहले क़बूल होता है और न तय वक़्त के बाद। नमाज़ के बारे में अल्लाह तआला ने फ़रमाया है—

"नमाज़ हक़ीक़त में ऐसा फ़र्ज़ है जो वक़्त की पाबन्दी के साथ ईमानवालों पर लाज़िम (अनिवार्य) किया गया है।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-103)

और रोज़े के बारे में कहा—

"जो शख़्स इस महीने (रमज़ान) को पाए उसपर लाज़िम है कि इस पूरे महीने के रोज़े रखे।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-185)

इसी तरह हज के बारे में कहा—

"हज के महीने सबको मालूम हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-197)

और ज़कात के बारे में कहा—

"और अल्लाह का हक़ अदा करो जब इनकी फ़सल काटो।

(क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-141)

दिल का अमल भी ज़बान के अमल (कर्म) की तरह है, इसलिए इसको भी वक़्त पर ही करना ज़रूरी है। एक बुज़ुर्ग का कहना है—

"बन्दे के औक़ात चार क़िस्म के हैं उनमें पाँचवीं क़िस्म नहीं है—नेमत, मुसीबत, फ़रमाँबरदारी और मासियत (गुनाह) या जुर्म, और तुम्हारे ज़िम्मे अल्लाह के लिए हर वक़्त में बन्दगी का एक

हिस्सा है जिसे तुम्हें उसी की मरज़ी के मुताबिक़ पूरा करना है।"

जिसका वक़्त इताअत और फ़रमाँबरदारी में गुज़रे उसका तौर-तरीक़ा [य]ह होना चाहिए कि वह अल्लाह का एहसानमन्द हो कि उसने उसे अपनी [फ़]रमाँबरदारी के कामों की हिदायत दी और उनको पूरा करने की तौफ़ीक़ [दी]। और जिसका वक़्त नेमतों में गुज़रे उसका तौर-तरीक़ा शुक्र है। और शुक्र [अ]स्ल में अल्लाह से ख़ुशदिली के साथ ताल्लुक़ बनाए रखने का नाम है।

इसी तरह जिसका वक़्त अल्लाह की नाफ़रमानी और गुनाह के कामों में [गु]ज़रे उसे तौबा और इसतिग़फ़ार करना चाहिए और जिसका वक़्त मुसीबत [में] गुज़रे उसे सब्र और राज़ी रहने का रास्ता अपनाना चाहिए, और राज़ी रहने [का] मतलब अस्ल में नफ़्स (मन) का अल्लाह से राज़ी होना है। और सब्र अस्ल में अल्लाह के हुक्म पर जमे रहना और उसे मज़बूती से थामे रहना है।

ऊपर जो कुछ बुज़ुर्ग ने कहा है वह हक़ीक़त में क़ुरआन और सुन्नत की सच्ची तस्वीर है। इसलिए हम देखते हैं कि अल्लाह फ़रमाँबरदारी के मक़ाम का ज़िक्र करते हुए फ़रमाता है—

> "(ऐ नबी!) कहो कि यह अल्लाह का फ़ज़्ल और उसकी मेहरबानी है कि यह चीज़ (क़ुरआन) उसने भेजी, इसपर तो लोगों को ख़ुशी मनानी चाहिए, यह (क़ुरआन) उन सब चीज़ों से बेहतर है जिन्हें लोग समेट रहे हैं।" (क़ुरआन, सूरा-10 यूनुस, आयत-58)

और नेमत का ज़िक्र करते हुए यूँ फ़रमाया है—

> "खाओ अपने रब का दिया हुआ रिज़्क़ (आजीविका) और शुक्र बजा लाओ उसका। शहर (ज़मीन) है बेहतर और पाकीज़ा और पालनहार बख़्शनेवाला है।" (क़ुरआन, सूरा-34 सबा, आयत-15)

इसी तरह क़ुरआन में गुनाह और बुरे कामों का ज़िक्र करते हुए अल्लाह फ़रमाता है—

> "(ऐ नबी!) कह दो कि ऐ मेरे बन्दो जिन्होंने अपनी जानों पर

ज़्यादती की है, अल्लाह की रहमत से मायूस न हो जाओ, यक़ीनन अल्लाह सारे गुनाह माफ़ कर देता है, वह तो गफ़ूरुर्रहीम (क्षमाशील और दयावान) है।" (क़ुरआन, सूरा-39 ज़ुमर, आयत-53)

अल्लाह ने आज़माइश और मुसीबत के वक़्त एक मुसलमान के किरदा (चरित्र) का नक़्शा इस तरह खींचा है—

"और हम ज़रूर तुम्हें ख़ौफ़ और डर, भूख, जान-माल के नुक़सान और आमदनियों के घाटे में डालकर तुम्हारी आज़माइश करेंगे। इन हालतों में जो लोग सब्र करें और जब कोई मुसीबत पड़े तो कहें कि 'हम अल्लाह ही के हैं और अल्लाह ही की तरफ़ हमें पलटकर जाना है', उन्हें ख़ुशख़बरी दे दो।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा आयतें-155,156)

नबी (सल्ल॰) से रिवायत है—

"मुसलमान का मामला अजीब है, बेशक उसका हर तौर-तरीक़ा उसके लिए बेहतर है, और यह सिर्फ़ मुसलमान के लिए ख़ास है। अगर उसे ख़ुशहाली मिलती है तो वह अल्लाह का शुक्र अदा करता है और यह उसके हक़ में बेहतर है, और अगर वह बदहाली से दोचार होता है तो सब्र से काम लेता है, और यह उसके लिए बेहतर है।" (हदीस : मुस्लिम)

बेहतर वक़्त की तलाश

जो लोग नेकी के कामों में दिलो-जान से आगे बढ़नेवाले हों, उन्हें चाहि कि उन वक़्तों की तलाश व जुस्तजू करें जिन्हें अल्लाह ने रूहानी ख़ासियत से नवाज़ा है, और उनके ज़रिए से उन्हें दूसरे वक़्तों पर फ़ज़ीलत बख़्शी है हदीसों में उन मुबारक घड़ियों की निशानदेही भी की गई है। ख़ास करन सिर्फ़ अल्लाह तआला के हाथ में है कि वह अपनी रहमत से जिसको चाहत है ख़ास करता है और जिस चीज़ को चाहता है आम कर देता है। चुनां अल्लाह तआला का इरशाद है—

"तेरा रब पैदा करता है जो कुछ चाहता है और (वह ख़ुद ही अपने

काम के लिए जिसे चाहता है) चुन लेता है। यह चुनाव उन लोगों के करने का काम नहीं है।" (क़ुरआन, सूरा-28 क़सस, आयत-68)

अल्लाह ने सेहर (प्रातःकाल) के वक़्त को रात पर फ़ज़ीलत दी है। और यह रात का आख़िरी तिहाई हिस्सा है। इसमें अल्लाह जलवा फ़रमा होता है और पुकारकर कहता है—

"है कोई माफ़ी चाहनेवाला कि उसको माफ़ कर दूँ? है कोई तौबा करनेवाला कि उसकी तौबा क़बूल कर लूँ? है कोई माँगनेवाला कि उसे दूँ, है कोई पुकारनेवाला कि उसकी पुकार सुनूँ—यह सिलसिला फ़ज्र का वक़्त होने (प्रभातकाल) तक चलता रहता है।"

(हदीस : अहमद, मुस्लिम)

इसी लिए अल्लाह ने अपने परहेज़गार और नेक बन्दों की सिफ़त (विशेषता) बयान करते हुए कहा है—

"बेशक परहेज़गार लोग उस दिन बाग़ों और चश्मों में होंगे, जो कुछ उनका रब उन्हें देगा उसे ख़ुशी-ख़ुशी ले रहे होंगे। वे उस दिन के आने से पहले नेक काम करनेवाले (उत्तमकार) थे, रातों को कम ही सोते थे, फिर वही रात के पिछले पहरों में माफ़ी माँगते थे।"

(क़ुरआन, सूरा-51 ज़ारियात, आयतें-15-18)

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अल्लाह अपने बन्दों से सबसे ज़्यादा क़रीब रात के आख़िरी हिस्से में होता है, अगर तुम उन लोगों में शामिल होना चाहते हो, जो उस वक़्त में अल्लाह को याद करते हैं, तो हो जाओ।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

इसी तरह अल्लाह तआला ने हफ़्ते के दिनों में जुमा के दिन को फ़ज़ीलत (श्रेष्ठता) बख़्शी है। यह मुसलमानों के लिए हफ़्ते की ईद है। उसी दिन जुमे की फ़र्ज़ नमाज़ और जुमे में लोगों का एक-दूसरे से मुलाक़ात करना है। और उसी में एक घड़ी मक़बूलियत की है, जो मुसलमान इसमें भलाई की दुआ करता है, अल्लाह उसे क़बूल करता है।

हदीस में है कि पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जो शख़्स अव्वल (शुरू) वक़्त में जुमा की नमाज़ के लिए मस्जिद में जाता है तो उसे ऊँट की क़ुरबानी का सवाब मिलता है, और जो उसके बाद गया तो उसे गाय की क़ुरबानी का सवाब मिलेगा, और जो उसके बाद गया तो मानो उसने बकरी क़ुरबान की, यहाँ तक कि मुर्ग़ी और अंडे की नौबत आती है। और जब ख़तीब (खुतबा देनेवाला) मेम्बर पर चढ़ जाता है तो फ़रिश्ते अपने रजिस्टर बन्द कर देते हैं।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, अहमद, अबू-दाऊद, तिरमिज़ी, नसई)

इसी तरह अल्लाह ने पूरे साल के दिनों में ज़िल-हिज्जा के दस दिनों को फ़ज़ीलत बख़्शी है, और उनमें भी सबसे अफ़ज़ल 'अरफ़ा' का दिन है—बल्कि इसमें कोई मतभेद नहीं कि यह साल का सबसे अफ़ज़ल (बेहतरीन) दिन है।

अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"उन दस दिनों के आमाल (कर्म) अल्लाह को सारे दिनों के आमाल से ज़्यादा पसन्द हैं।"

लोगों ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! अल्लाह की राह में जिहाद भी नहीं!"

आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अल्लाह की राह में जिहाद भी नहीं, सिवाय इसके कि आदमी अपनी जान और माल के साथ अल्लाह के रास्ते में जिहाद के लिए निकले और फिर उनमें से कुछ वापस लेकर न लौटे।"

(हदीस : बुख़ारी)

महीनों में अल्लाह ने रमज़ान के महीने को फ़ज़ीलत (बड़ाई) दी है। यही वह महीना है जिसमें क़ुरआन नाज़िल हुआ जो लोगों के लिए सरापा हिदायत है और ऐसी वाज़ेह तालीम पर मुश्तमिल (आधारित) है जो सीधा रास्ता दिखानेवाली और सच और झूठ का फ़र्क़ करनेवाली है। इसी महीने

में रोज़ा भी फ़र्ज़ किया गया और रात के क़ियाम (नमाज़) को मसनून (नबी का तरीक़ा) ठहराया गया। इस महीने में नेकियों को ज़्यादा-से-ज़्यादा करना पसन्दीदा है। यह महीना मुसलमानों के लिए बहार का मौसम है, परहेज़गार लोगों के लिए तिजारत का मौसम और नेकियों में आगे बढ़ जानेवालों के लिए मुसाबक़त का मैदान है। हमारे बुज़ुर्ग इस मुबारक महीने के आने का इन्तिज़ार बड़े ज़ौक़-शौक़ से किया करते थे और जब यह महीना आ जाता तो कहते—

"ख़ुश-आमदीद, ऐ पाक करनेवाले!"

इसलिए कि उन्हें यक़ीन होता था कि वे इस मुबारक महीने के ज़रिए से अपने ऐबों से छुटकारा पा लेंगे और गुनाहों की नजासतों और गन्दगियों से अपने को पाक-साफ़ कर लेंगे—क्योंकि अल्लाह तौबा करनेवालों और पाकीज़गी अपनानेवालों को पसन्द करता है।

उबादा-बिन-सामित (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने एक दिन रमज़ान के आने पर कहा—

> "तुम्हारे पास रमज़ान का बरकतवाला महीना आ गया, इसमें अल्लाह तुम्हें ढाँप लेता है, और अपनी रहमतें नाज़िल करता है, गुनाहों को माफ़ करता है, दुआएँ क़बूल करता है। नेकियों के मामले में तुम्हारे एक-दूसरे से आगे बढ़ जाने के जज़्बे को देखता है, और अपने फ़रिश्तों पर फ़ख़्र करता है—तुम अल्लाह को अपनी तरफ़ से ज़्यादा-से-ज़्यादा ख़ैर (भलाई) के काम करके दिखाओ, इसलिए कि वह आदमी बहुत ही बद-बख़्त (अभागा) हैं जो इस महीने में अल्लाह की रहमत से महरूम हो गया।"
>
> (हदीस : अल-जामिउल-कबीर लिस्सुयूती)

अगरचे रमज़ान का पूरा महीना ही अहमियतवाला है, लेकिन उसके आख़िरी 10 दस दिन दो वजहों से बहुत ही अहम हैं—

(1) यह महीने का आख़िरी हिस्सा है और आमाल (कर्मों) का एतिबार ख़वातीम (आख़िरी अमल) से होता है। नबी (सल्ल॰) दुआ माँगा करते थे—

اَللّٰهُمَّ اجْعَلْ خَيْرَ عُمْرِىْ اٰخِرَهٗ، وَخَيْرَ عَمَلِىْ خَوَاتِمَهٗ، وَخَيْرَأَيَّامِىْ يَوْمَ اَلْقَاكَ.

अल्लाहुम-मज-अल ख़ै-र उमरी आख़ि-रहू, व ख़ै-र अ-म-ली ख़वातिम-हू, व ख़ै-र अय्यामी यौ-म अलक़ा-क।

"ऐ अल्लाह! मेरी आख़िरी उम्र को बेहतर बना दे, मेरे आख़िरी आमाल को बेहतर बना दे और मेरा बेहतर दिन अपनी मुलाक़ात के दिन को बना दे।" (हदीस : कंजुल-उम्माल)

(2) इन आख़िरी 10 दिनों में शबे-क़द्र का यक़ीन होता है। यह वह रा है जिसे अल्लाह ने हज़ार महीनों से बेहतर बनाया है, और इसकी फ़ज़ील (बड़ाई) में मुस्तक़िल एक सूरा-97 "सूरतुल-क़द्र" नाज़िल की है।

क़ुरआन मजीद की आयतों से रमज़ान में इस रात का होना यक़ीनी है और हदीसों में भी रमज़ान के आख़िरी 10 दिनों में शबे-क़द्र को तलाश कर का हुक्म दिया गया है।

नबी (सल्ल॰) का मामूल था कि जब रमज़ान के आख़िरी दस दिनों दाख़िल होते तो चाक़-चौबन्द हो जाते, रात-भर इबादत करते, अपन बीवियों को भी जगाते और एतिकाफ़ भी करते थे।

अल्लाह ने महीनों में रमज़ान के बाद जिन मुहतरम महीनों को फ़ज़ील बख़्शी है वे हैं रजब, ज़ी-क़ादा, ज़िल-हिज्जा और मुहर्रम के महीने। अल्ला फ़रमाता है—

"हक़ीक़त यह है कि महीनों की तादाद जब से अल्लाह ने आसमानों और ज़मीन को पैदा किया है, अल्लाह के नविश्ते (लेख) में बारह ही है, और उनमें से चार महीने मुहतरम (आदर के) हैं। यही ठीक ज़ाब्ता है। इसलिए इन चार महीनों में अपने ऊपर ज़ुल्म न करो।" (क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-36)

मुसलमान की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी का निज़ाम

अगर किसी के दिल में यह ख़ाहिश हो कि उसकी उम्र में बरकत हो तो वह उस निज़ाम (व्यवस्था) के मुताबिक़ चले जो इस्लाम ने रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के लिए तजवीज़ किया है, इसी निज़ाम पर चलकर वह दुनिया की कामयाबियों को हासिल कर सकता है और आख़िरत की कामयाबियों को भी।

इस निज़ाम का तक़ाज़ा है कि आदमी सुबह जल्दी उठे और रात को जल्दी सो जाए। चूँकि मुसलमान के दिन की शुरुआत फ़ज्र के शुरू होने के साथ या कम-से-कम सूरज निकलने से पहले होती है, इसलिए वह साफ़-सुथरी और पाकीज़ा सुबह को पाता है जो उन गुनहगारों के मन की गन्दगियों से पाक होती है जो दिन चढ़ने पर अपनी नींद से जागते हैं।

इस तरह मुसलमान सुबह तड़के अपने दिन का स्वागत करता है। वह वक़्त यही वक़्त है जिसमें नबी (सल्ल॰) ने अपनी उम्मत के लिए बरकत की यह दुआ की है—

"ऐ अल्लाह मेरी उम्मत के लिए सुबह सादिक़ (तड़के) में बरकत दे।" (हदीस : अहमद)

आज का मुसलमान जिन आफ़तों से दोचार है उनकी वजहों में से एक वजह यह है कि उसने अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी (दैनिक जीवन) का निज़ाम बदल डाला है, रात में जल्दी सोने के बजाय देर तक जागता है, और फिर इस तरह सोता है कि सुबह की नमाज़ निकल जाती है। किसी बुज़ुर्ग ने कहा है—

"ताज्जुब है उस शख़्स पर जो सुबह की नमाज़ सूरज निकलने के बाद पढ़ता है। ऐसे शख़्स को कैसे रोज़ी मिलेगी!?"

अबू-हुरैरा (रज़ि॰) रिवायत करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—
''तुममें से जब कोई सोया होता है तो शैतान उसकी गुद्दी पर तीन गिरहें लगाता है, और हर गिरह (गाँठ) पर कहता है कि अभी रात लम्बी है, तू सोया रह। लेकिन जब वह शख़्स जागकर अल्लाह का ज़िक्र करता है तो एक गिरह या गाँठ खुल जाती है, और जब वुज़ू करता है तो दूसरी गिरह खुल जाती है, और जब वह नमाज़ पढ़ता है तो तीसरी गिरह भी खुल जाती है। इस तरह उसकी सुबह ख़ुशगवार होती है। और जो लोग ऐसा नहीं करते उनके मन में शैतानी और जिस्म में सुस्ती होती है।'' (हदीस : बुख़ारी)

कितना बड़ा फ़र्क़ है उस मुसलमान में जिसके सिर पर शैतानी गिरहें खुली हुई होती हैं और उसमें कि जिसके सिर पर शैतानी गिरहें मौजूद होती हैं।

पहला शख़्स अपने दिन का इस्तिक़बाल सुबह सादिक़ (प्रातः काल) ही से ज़िक्र, पाकी और नमाज़ के साथ करता है, और प्रसन्नता, ख़ुशगवारी और सीना खुल जाने के साथ रोज़मर्रा के काम में लग जाता है। इसके बरख़िलाफ़ दूसरा शख़्स दिन चढ़े तक सोता है, और उसके नफ़्स में शैतानी और जिस्म में गिरानी और बोझलपन होता है। उसके क़दम भी बहुत ही धीरे-धीरे उठते हैं, इस तरह उसे दिन-भर सुस्ती घेरे रहती है।

मुसलमान अपने दिन की शुरुआत अल्लाह की इताअत और बन्दगी के कामों से करता है। फ़र्ज़ और सुन्नतें अदा करता है और नबी (सल्ल॰) से साबित सुबह के ज़िक्र का विर्द करता है। मिसाल के तौर पर—

أَصْبَحْنَا وَأَصْبَحَ الْمُلْكُ لِلّٰهِ، وَالْحَمْدُ لِلّٰهِ، لَا شَرِيْكَ لَهٗ لَا اِلٰهَ
إِلَّا هُوَ، وَإِلَيْهِ النُّشُوْرُ.

अस्बह्ना व अस-बहल-मुल्कु लिल्लाह, वल-हम्दुलिल्लाह, ला शरी-क लहू ला इ-ला-ह इल्ला हु-व, व इलैहिन्नुशूर।

''हम अल्लाह के हैं और बादशाही भी अल्लाह की है, और शुक्र

और तारीफ़ के लायक़ सिर्फ़ अल्लाह की ज़ात है जिसका कोई साझी नहीं, उसके अलावा कोई माबूद (पूज्य) नहीं, और उसी के पास दोबारा ज़िन्दा होकर जाना है।" (हदीस : बुख़ारी)

اَللّٰهُمَّ مَا أَصْبَحَ بِيْ مِنْ نِّعْمَةٍ أَوْبِأَحَدٍ مِّنْ خَلْقِكَ فَمِنْكَ وَحْدَكَ لَا شَرِيْكَ لَكَ، فَلَكَ الْحَمْدُ وَلَكَ الشُّكْرُ.

अल्लाहुम-म मा अस्ब-ह बी मिन-निअ्मतिन औ बि-अ-हदिम-मिन ख़लक़ि-क फ़मिन-क वह-द-क ला शरी-क लक, फ़-ल-कल हम्दु व ल-कश्शुक्र।

"ऐ अल्लाह! जो भी नेमत मुझे मिली है या तेरी मख़लूक़ में से किसी को हासिल हुई है वह सिर्फ़ तेरी दी हुई है। तेरा कोई शरीक और साझी नहीं, सारी तारीफ़ें और हर तरह का शुक्र तेरे ही लिए है।" (हदीस : नसई)

اَللّٰهُمَّ إِنِّيْ اَصْبَحْتُ مِنْكَ فِيْ نِعْمَةٍ وَعَافِيَةٍ وَسِتْرٍ فَأَتِمَّ نِعْمَتَكَ عَلَيَّ وَعَافِيَتَكَ وَسِتْرَكَ فِي الدُّنْيَا وَالْآخِرَةِ.

अल्लाहु-म इन्नी अस्बहतु मिन-क फ़ी निअ्मतिन व आफ़ि-यतिन व सितरिन, फ़-अतमिम निअ्-म-त-क अलै-य व आफ़ि-य-त-क व सित-र-क फ़िद्दुनया वल-आख़िरह्।

"ऐ अल्लाह! तेरे ही फ़ज़्ल से मुझको हर नेमत, आफ़ियत और हिफ़ाज़त हासिल हुई है। इसलिए मेरी तुझसे दुआ है कि तू मुझपर दुनिया और आख़िरत दोनों जगह अपनी नेमत, आफ़ियत और हिफ़ाज़त का फ़ैसला फ़रमा दे।"

(हदीस : अल-जामिउल-कबीर लिस्सियूती)

फिर तौफ़ीक़ के मुताबिक़ क़ुरआन मजीद का कुछ हिस्सा पूरे लगाव के साथ पढ़ता है और उसके मानी व मतलब को समझने की कोशिश करता है। जैसा कि अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"यह एक बड़ी बरकतवाली किताब है जो (ऐ नबी) हमने तुम्हारी तरफ़ उतारी है ताकि ये लोग इसकी आयतों पर ग़ौर करें और अक़्ल और फ़िक्र रखनेवाले उससे सबक़ लें।"

(क़ुरआन, सूरा-38 साद, आयत-29)

मुसलमान इन सारे कामों से फ़ारिग़ होकर एतिदाल के साथ नाश्ता करता है और फिर रोज़मर्रा के कामों में लग जाता है और रोज़गार की तदबीर और रोज़ी-रोटी की दौड़-धूप में लग जाता है। वह इस बात की कोशिश करता है कि अपने को किसी-न-किसी हलाल काम में लगाए रखे, चाहे वह कितना ही बड़ा अमीर और मालदार क्यों न हो, और चाहे उसकी मशग़ूलियत (व्यस्तता) सिर्फ़ निगरानी और देखभाल की हद तक ही क्यों न हो, इसलिए कि ख़ाली वक़्त ग़लत कामों में लग जाता है।

यही वजह है कि इस्लाम ने सूद (ब्याज) को हराम ठहराया है, इसलिए कि यह एक ऐसा निज़ाम है जिसमें किसी जिद्दो-जुहद, शिर्कत और अन्देशे के बिना माल लाज़िमी तौर पर माल को बढ़ाता है, और ब्याज लेनेवाला पूरे इत्मीनान और यक़ीन के साथ अपनी गद्दी पर बैठा रहता है। वह जानता है कि उसके सौ रुपये हर हाल में उसके लिए एक सौ दस और हज़ार रुपये एक हज़ार एक सौ लाएँगे और उसपर किसी तरह की ज़िम्मेदारी भी न होगी। यह इस्लाम के इनसानियत के नज़रिए के बिलकुल ही ख़िलाफ़ है।

आदमी को चाहिए कि वह जिस तरह ज़िन्दगी से कुछ लेता है उसी तरह उसे कुछ दे भी, और बेकारी व बेरोज़गारी की ज़िन्दगी न गुज़ारे, कि खाए, मगर कुछ न करे, चाहे यह बेकारी अल्लाह की इबादत में यकसूई ही के नाम पर क्यों न हो। इसलिए कि इस्लाम में रहबानियत (संन्यास) के लिए कोई जगह नहीं है।

इमाम बैहक़ी (रह॰) ने अब्दुल्लाह-बिन-ज़ुबैर (रज़ि॰) से रिवायत की है कि उन्होंने फ़रमाया—

"दुनिया में सबसे बुरी चीज़ बेकारी है।"

अल्लामा मुनावी (रह॰) ने अपनी किताब 'फ़ैज़ुल-क़दीर' में इसका

तलब बयान करते हुए कहा है कि जब इनसान अमल (कर्म) से ख़ाली कर बेकार बैठा रहता है तो ज़ाहिर में वह ख़ाली नज़र आता है, मगर सका दिल तरह-तरह की बेहूदा चीज़ों में भटकता रहता है, बल्कि शैतान सके दिल में अपना ठिकाना बना लेता है, और उसी में अण्डे-बच्चे देता ऽता है।

इसी लिए हज़रत उमर (रज़ि॰) जब किसी सेहतमन्द आदमी को देखते ा उसके बारे में लोगों से पूछते कि इसके पास कोई हुनर है? अगर जवाब हीं में मिलता तो वह आदमी उनकी नज़र से गिर जाता।

एक बुज़ुर्ग ने बेहुनर आदमी की उस उल्लू से तुलना की जो खँडहर बयाबान) में रहता है और उसके वुजूद से किसी को फ़ायदा नहीं पहुँचता।

मुसलमान अपने दुनिया के अमल को भी इबादत और जिहाद समझता जबकि उसकी नीयत ठीक हो, और वह अमल उसे अल्लाह की याद से ाफ़िल न कर दे, और उसने अपने उस अमल को पूरी अमानतदारी और ाच्छे तरीक़े से पूरा किया हो। इसलिए कि किसी भी काम को अच्छे तरीक़े ा करना हर मुसलमान पर फ़र्ज़ है। जैसा कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "बेशक अल्लाह तआला ने हर चीज़ में एहसान (यानी अच्छे तरीक़े) को फ़र्ज़ किया है।" (हदीस : मुस्लिम)

एक दूसरी हदीस में है—

> "बेशक अल्लाह के नज़दीक यह बात पसन्दीदा है कि जब तुममें से कोई आदमी कोई काम करे तो उसे अच्छे तरीक़े से करे।"
> (हदीस : बैहक़ी)

रोज़ाना की वे ज़िम्मेदारियाँ जिनको भुला देना या नज़रअन्दाज़ कर देना केसी मुसलमान के लिए जाइज़ नहीं है वे ये हैं कि वह अपने समाज की ोवा करे और उसके लोगों की ज़रूरतों को पूरा करने में उनकी मदद करे, और उनके मामलात में आसानी पैदा करे ताकि उसका यह अमल उसके लेए सदक़ा और लोगों की दुआएँ हासिल करने का साधन बन जाए।

अबू-मूसा (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"हर मुसलमान पर सदक़ा है।"

लोगों ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! अगर वह न पाए?"

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अपने हाथ से काम करे, और अप आपको भी फ़ायदा पहुँचाए और सदक़ा करे।

लोगों ने कहा "अगर ऐसा न कर सके या न करे?"

आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "किसी परेशानहाल हाजतमन्द की मद करे।"

लोगों ने पूछा, "अगर यह भी न करे?"

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "उसे भलाई का हुक्म देना चाहिए।"

लोगों ने कहा, "अगर यह भी न किया?"

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "वह बुराई से बाज़ रहे, इसलिए कि यह भ एक सदक़ा है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम

यह सदक़ा और इजतिमाई (सामूहिक) टैक्स हर मुसलमान पर रोज़ान फ़र्ज़ होता है, बल्कि एक हदीस में है कि हर जोड़ और हर मसाम (जिस का वह छिद्र जिससे पसीना निकलता है, रोम छिद्र) पर सूरज निकलने के साथ ही सदक़ा वाजिब (अनिवार्य) होता है। इस तरह मुसलमान अप आसपास और क़रीब के लिए भलाई और अम्न व सलामती का ज़रिआ ब जाता है।

अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"रोज़ाना सूरज निकलने के साथ ही लोगों के हर-हर जोड़ पर सदक़ा वाजिब होता है—दो आदमियों के बीच सुलह करा देना सदक़ा है, किसी आदमी को उसकी सवारी पर सवार करा देना और उसका सामान ऊपर उठाकर उसको पकड़ा देना सदक़ा है, पाकीज़ा या अच्छा बोल सदक़ा है, नमाज़ के लिए उठनेवाला तुम्हारा हर

क़दम सदक़ा है, और रास्ते से तकलीफ़ देनेवाली चीज़ का हटा देना भी सदक़ा है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

चूँकि इनसान के जिस्म के ये सारे अंग ख़ुदा की तरफ़ से नेमत के तौर पर मिले हैं इसलिए उसकी एहसानमन्दी का तक़ाज़ा है कि वह इनपर अल्लाह का शुक्र बजा लाए, और शुक्रगुज़ारी की सबसे अच्छी शक्ल यह है कि इनसान अपने जिस्म के हिस्सों और अंगों को ख़ैर और भलाई के हर मुमकिन काम में इस्तेमाल करे।

ज़वाल (दोपहर से थोड़ी देर बाद) के वक़्त मुअज़्ज़िन ज़ुह्‍र की नमाज़ के लिए अज़ान देता है तो मुसलमान नमाज़ अदा करने के लिए तेज़ी से लपकता है, उसकी यह कोशिश होती है कि नमाज़ अव्वल वक़्त में अदा करे और जहाँ तक हो सके नमाज़ जमाअत के साथ अदा करे। इसलिए कि अव्वल वक़्त में अल्लाह की ख़ुशनूदी है और अल्लाह तआला ने नेकियों में मुक़ाबले का हुक्म दिया है। नबी (सल्ल०) ने उन लोगों के घरों में आग लगाने का इरादा कर लिया था जो अज़ान की आवाज़ सुनकर अपने घरों में बैठे रहते हैं और जमाअत के साथ नमाज़ अदा करने में शामिल नहीं होते हैं। जमाअत के साथ नमाज़ अदा करने की फ़ज़ीलत अकेले नमाज़ पढ़ने के मुक़ाबले में सत्ताईस गुना ज़्यादा है।

मुसलमान दोपहर में खाना खाता है, अल्लाह का दिया हुआ पाक रिज़्क़ खाता है, न इतना ज़्यादा खाता है कि तोन्द निकल आए और न इतनी कंजूसी से काम लेता है कि ग़ुरबत का एहसास होने लगे। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

> "ऐ आदम की औलाद! हर इबादत के मौक़े पर अपनी ज़ीनत (सज्जा) से आरास्ता (सुशोभित) रहो और खाओ-पियो और हद से आगे न बढ़ो, अल्लाह हद से बढ़नेवालों को पसन्द नहीं करता। (ऐ नबी!) इनसे कहो कि किसने अल्लाह की उस ज़ीनत को हराम कर दिया जिसे अल्लाह ने अपने बन्दों के लिए निकाला था, और किसने ख़ुदा की दी हुई पाक चीज़ें हराम कर दीं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़ आयतें-31,32)

गरम देशों में वह भी ख़ास तौर से गर्मी के मौसम में कुछ लोगों को क़ैलूला (दोपहर के खाने के बाद थोड़ी देर आराम) की ज़रूरत होती है और वे थोड़ी देर आराम करते हैं, इससे रात में इबादत करने और सुबह को उठने में मदद मिलती है। इसी क़ैलूले की तरफ़ क़ुरआन ने इन लफ़्ज़ों में इशारा किया है—

"और दोपहर को जब तुम कपड़े उतारकर रख देते हो।"

(क़ुरआन, सूरा-24 नूर, आयत-58)

फिर जब मुअज़्ज़िन अस्र की नमाज़ के लिए बुलाता है तो मुसलमान अगर क़ैलूला (आराम) कर रहा होता है तो आराम से और अगर काम कर रहा होता है तो काम के हुजूम (भीड़) से उठ खड़ा होता है और इस नमाज़ के लिए जल्दी करता है, इसलिए कि यह नमाज़ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और अहम नमाज़ है। किसी मुसलमान के लिए जाइज़ नहीं कि ख़रीदो-फ़रोख़्त और खेल-तमाशे उसे इस नमाज़ से ग़ाफ़िल (बेपरवाह) कर दें। नमाज़ के वक़्तों की पाबन्दी करनेवालों का ज़िक्र अल्लाह तआला अपनी किताब में इस तरह करता है—

"ऐसे लोग जिन्हें तिजारत और ख़रीदो-फ़रोख़्त अल्लाह की याद से, नमाज़ क़ायम करने और ज़कात देने से ग़ाफ़िल नहीं करती, वे उस दिन से डरते रहते हैं जिसमें दिल उलटने और आँखें पथरा जाने की नौबत आ जाएगी।" (क़ुरआन, सूरा-24 नूर, आयत-37)

यह बात किसी मुसलमान को शोभा नहीं देती कि वह सुस्ती करते हुए अस्र की नमाज़ को टालता रहे, यहाँ तक कि सूरज डूबने के क़रीब हो जाए, इसलिए कि यह मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) की नमाज़ होगी। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"यह मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) की नमाज़ है, यह मुनाफ़िक़ की नमाज़ है, यह मुनाफ़िक़ की नमाज़ है। वह सूरज निहारता रहता है, यहाँ तक कि वह शैतान के दोनों सींगों के बीच पहुँच जाता है तो वह उठता है और चार बार ठोंग मार लेता है, और उसमें अल्लाह का

ज़िक्र सिर्फ़ नाम के लिए करता है।" (हदीस : मुस्लिम)

सूरज डूबते ही मुसलमान मग़रिब की नमाज़ के लिए जल्दी करता है ताकि अव्वल वक़्त में उसको अदा करे, क्योंकि मग़रिब का वक़्त बहुत तंग (कम) होता है। और फ़र्ज़-सुन्नत से फ़ारिग़ होकर शाम के ज़िक्र और वज़ीफ़े में लग जाता है जैसे—

اَللّٰهُمَّ اِنَّ هٰذَا إِقْبَالُ لَيْلِكَ وَإِدْبَارُ نَهَارِكَ وَاَصْوَاتُ دُعَاتِكَ فَاغْفِرْلِىْ.

अल्लाहुम-म इन-न हा-ज़ा इक़बालु लैलि-क व इदबारु नहारि-क व अस्वातु दुआति-क फ़ग़फ़िरली।

"ऐ अल्लाह! यह तेरी रात के आने और तेरे दिन के वापस जाने और तेरे पुकारनेवालों की आवाज़ों का वक़्त है। ऐ अल्लाह! तू मेरी बख़्शिश फ़रमा दे।" (हदीस : अबू-दाऊद)

और सुबह की वे दुआएँ जिनका हम ज़िक्र कर चुके हैं उनका विर्द (जाप) भी करना चाहिए। बस फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि शाम को أَصْبَحْنَا 'अस्बहना' के बजाय أَمْسَيْنَا 'अमसैना' कहना चाहिए।

इन ज़िक्र और वज़ीफ़ों से फ़ारिग़ होकर वह शाम का खाना खाता है और उसका यह खाना औसत दरजे का होता है। फिर इशा की नमाज़ पढ़ता है और उसकी सुन्नतें अदा करता है। वित्र को मुअख़्ख़र करता है यानी बाद में पढ़ता है अगर वह रात में जागकर इबादत करने का आदी होता है, वरना सोने से पहले उसे पढ़ता है।

वह कभी-कभी अपने शाम के खाने को इशा की नमाज़ के बाद तक टाल देता है, मगर जब शाम का खाना और इशा की नमाज़ दोनों तैयार हों तो खाना पहले खाता है और नमाज़ बाद में पढ़ता है, जैसा कि हदीस में आया है।[1] ऐसा इसलिए है कि मुसलमान इस हाल में नमाज़ न पढ़े कि

1. "जब नमाज़ खड़ी हो जाए और खाना हाज़िर हो तो खाना शुरू करो।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

उसका दिल अल्लाह की याद के अलावा किसी और चीज़ में लगा हुआ हो।

सोने से पहले मुसलमान अपने कुछ हुक़ूक़ अदा कर सकता है। जैसे, किसी से मिलना या मिलने-जुलनेवाले लोगों के बीच बैठकर थोड़ी देर मेल-मुहब्बत की बातें करना, वग़ैरा।

मुसलमान के लिए यह निहायत ज़रूरी है कि अपनी दैनिक रूटीन में से एक हिस्सा पाबन्दी से किताबों के पढ़ने के लिए ख़ास करे ताकि उसके इल्म (ज्ञान) में बढ़ोत्तरी होती रहे। जैसा कि अल्लाह तआला ने अपने रसूल (सल्ल॰) से फ़रमाया—

"और दुआ करो कि ऐ मेरे रब! मुझे और इल्म अता कर।"

(क़ुरआन, सूरा-20 ताहा, आयत-114)

पढ़ने के लिए उन किताबों और पत्रिकाओं का चुनाव करे जो दीन-दुनिया दोनों के लिए फ़ायदेमन्द हों। एक हकीम का कथन है कि "तुम मुझे बताओ कि क्या पढ़ते हो, तो मैं तुम्हें बता दूँगा कि तुम कौन हो।"

इसी तरह इसमें कोई हरज नहीं है कि कुछ जाइज़ खेलों और शरई तफ़रीहों (मनोरंजनों) के ज़रिए से अपना दिल बहलाए। बस शर्त सिर्फ़ इतनी है कि ये चीज़ें रब की बन्दगी के रास्ते में रुकावट न हों और न उनकी वजह से उसके अपने और उसके ख़ानदानवालों के हक़ मारे जा रहे हों। इसी लिए मुसलमान के लिए यह बेहतर नहीं है कि वह रात में देर तक जागता रहे यहाँ तक कि कुछ हक़्क़ों की अदायगी में कोताही होने लगे। अगरचे उसने यह काम जान-बूझकर न किया हो तब भी यक़ीनी बात है कि जब एक पहलू पर ज़्यादती होगी तो दूसरा पहलू अपने-आप प्यासा रह जाएगा, यानी उसमें कमी रह जाएगी और ऐसा करना अल्लाह तआला के उस हुक्म के ख़िलाफ़ है जिसका ज़िक्र क़ुरआन ने इन शब्दों में किया है—

"आसमान को उसने बुलन्द किया और मीज़ान (सन्तुलन) क़ायम कर दी, उसका तक़ाज़ा है कि तुम मीज़ान (तुला) में ख़लल न डालो, इनसाफ़ के साथ ठीक-ठीक तौलो और तौल में कमी न करो।"

(क़ुरआन, सूरा-55 रहमान, आयतें-7-9)

इसी तरह वे दस हुक़ूक़ (अधिकार) जिनकी रिआयत का हुक्म अल्लाह तआला ने अपनी किताब में दिया है और जिनका याद रखना हर मुसलमान के लिए ज़रूरी है, उनको अदा करने में कभी भी कमी-बेशी से काम नहीं लेना चाहिए, बल्कि हर हक़ का जो तक़ाज़ा हो उसे पूरा करना चाहिए। उन हक़ों की तफ़सील क़ुरआन में इस तरह है—

"और तुम सब अल्लाह की बन्दगी करो, उसके साथ किसी को शरीक न करो, माँ-बाप के साथ नेक सुलूक करो, रिश्तेदारों, यतीमों और मिसकीनों के साथ बेहतर तरीक़े से पेश आओ, और रिश्तेदार पड़ोसी से, अजनबी पड़ोसी से, साथ रहनेवाले शख़्स और मुसाफ़िर से, और उन लौंडी-गुलामों से जो तुम्हारे क़ब्ज़े में हों, एहसान का मामला रखो।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-36)

इन हक़ों (अधिकारों) में पहला और सबसे बड़ा हक़ अल्लाह तआला का है जो सारी कायनात (सृष्टि) का पैदा करनेवाला और सारी चीज़ों का मालिक है, वही ज़िन्दगी देनेवाला है और सारी नेमतें उसी के हाथ में हैं—

"तुमको जो नेमत भी हासिल है, अल्लाह ही की तरफ़ से है।"
(क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, आयत-53)

इसलिए किसी मुसलमान के लिए जाइज़ नहीं कि वह अल्लाह के हक़ को अदा करने में सुस्ती और कोताही से काम ले।

अल्लाह के रोज़ाना के हुक़ूक़ में सबसे नुमायाँ हक़ नमाज़ है जिसमें ख़ुशूअ् को अल्लाह ने मुसलमानों के लिए सबसे पहली ख़ूबी बताया है—

"जो अपनी नमाज़ में ख़ुशूअ् (विनम्रता) अपनाते हैं।"
(क़ुरआन, सूरा-23 मोमिनून, आयत-2)

और नमाज़ की हिफ़ाज़त को उनका आख़िरी गुण बताया—

"जो अपनी नमाज़ों की हिफ़ाज़त (रक्षा) करते हैं।"
(क़ुरआन, सूरा-23 मोमिनून, आयत-9)

अल्लाह तआला ने उस शख़्स की तबाही और बरबादी का फ़ैसला कर दिया जो नमाज़ से इस हद तक लापरवाह हो कि उसका मालूम और तय वक़्त ख़त्म हो जाए—

"फिर तबाही है उन नमाज़ पढ़नेवालों के लिए जो अपनी नमाज़ से लापरवाही बरतते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-107 माऊन, आयतें-4,5)

अल्लाह के बाद सबसे बड़ा हक़ इनसान पर उसके माँ-बाप का है, इसी लिए क़ुरआन में तौहीद और ख़ालिस अल्लाह की बन्दगी के फ़ौरन बाद माँ-बाप के साथ बेहतर सुलूक करने का ज़िक्र आया है—

"तेरे रब ने फ़ैसला कर दिया है कि तुम लोग किसी की इबादत न करो, मगर सिर्फ़ उस (अल्लाह) की, और माँ-बाप के साथ नेक सुलूक करो।" (क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-23)

क़ुरआन और सुन्नत ने माँ के हक़ को ख़ास तौर पर अहमियत दी है इसलिए कि उसका हक़ अदा करना ज़रूरी है और वह रिआयत की ज़्यादा हक़दार है और बच्चे की परवरिश में उसकी तकलीफ़ें भी ज़्यादा हैं—

"उसकी माँ ने तकलीफ़ें उठाकर उसे पेट में रखा और तकलीफ़ उठाकर ही उसको जना, और उसके हमल (गर्भ) और दूध छुड़ाने में तीस महीने लग गए।" (क़ुरआन, सूरा-46 अहक़ाफ़, आयत-15)

माँ के लिए साल में एक दिन ख़ास कर लेना जिसे लोग 'ईदुल-उम्म' (Mother's Day) का नाम देते हैं, इस्लाम की निगाह में न तो काफ़ी है और न ही वह इसे पसन्द करता है, बल्कि इस्लाम यह चाहता है कि माँ के सब दिन ईद हों।

इसके बाद नज़दीकी रिश्तेदारों—भाई-बहन, चाचा-चाचियाँ, फूफा-फूफियाँ, मामूँ-मामियाँ और इनके बेटे-बेटियों—के हुक़ूक़ (अधिकार) आते हैं, और इनके अलावा जो सगे-सम्बन्धी हैं उनके भी हुक़ूक़ हैं।

इसी तरह समाज के कमज़ोर लोगों—यतीमों, मिसकीनों और मुसाफ़िरों—के भी हुक़ूक़ हैं। मेल-जोल के लोगों यानी रिश्तेदार पड़ोसियों या दूर के पड़ोसियों का भी हक़ है और उस साथी का भी हक़ है जो सफ़र और

ग़ैर-सफ़र में इनसान के साथ रहता है, चाहे यह साथ रहना वक़्ती हो या हमेशा के लिए। मियाँ-बीवी के हुक़ूक़ भी इसी क़ानून या दफ़ा के तहत आते हैं।

आख़िरी हक़ 'मिल्के-यमीन' (यानी वे लौंडी या ग़ुलाम जो आपके क़ब्ज़े में हों) का है। अगरचे उसका ताल्लुक़ ग़ुलामी के ज़माने में ग़ुलामों के साथ अच्छे और नेक सुलूक से है। लेकिन इस शब्द के आम मतलब में वे सारे जानवर, सामान, औज़ार और दूसरी चीज़ें आती हैं जो इनसान के मातहत (अधीन) हैं। उसपर इस बात की पाबन्दी है कि वह अपनी मातहत चीज़ों के साथ नेक और अच्छा सुलूक करे। उनकी निगरानी और हिफ़ाज़त करे बल्कि उनकी भरपूर रिआयत करे और उन्हें बरबाद न होने दे, इसलिए कि वह उन चीज़ों का अमीन (अमानतदार) है।

मुसलमान जब सोने का इरादा करे तो उसके लिए बेहतर यह है कि वुज़ू करे और दो रकअत नमाज़ पढ़े, फिर अपने बिस्तर पर दाईं करवट लेट जाए और सोने के वक़्त की जो दुआएँ हैं उनको पढ़े—

मिसाल के तौर पर नबी (सल्ल॰) ने यह दुआ बताई है—

بِاسْمِكَ رَبِّيْ وَضَعْتُ جَنْبِيْ، وَبِكَ اَرْفَعُهُ. إِنْ اَمْسَكْتَ نَفْسِيْ فَاغْفِرْلَهَا، وَإِنْ اَرْسَلْتَهَا فَاحْفَظْهَا بِمَا تَحْفَظُ بِهٖ عِبَادَكَ الصَّالِحِيْنَ.

बिसमि-क रब्बी व-ज़अ्तु जम्बी, व बि-क अर-फ़अहू। इन-अमसक-त नफ़्सी फ़ग़फ़िर-लहा, व इन अर्सल-तहा फ़हफ़ज़्हा बिमा तह्फ़ज़ू बिही इबा-द-कस्सालिहीन।

"ऐ मेरे रब! तेरे नाम से मैंने अपने पहलू को बिस्तर पर रखा, और तेरे ही नाम से उठाऊँगा। अगर तू मेरे नफ़्स (प्राण) को अपने पास रोक ले तो इसकी मग़फ़िरत कर, और अगर तू उसे वापस दुनिया में आने के लिए छोड़ दे तो उसकी हिफ़ाज़त इस तरह कर जिस

तरह तू अपने नेक बन्दों की हिफ़ाज़त करता है।''

(हदीस : बुख़ारी)

मुसलमान को चाहिए कि उन किताबों से फ़ायदा उठाए जो हमारे आलिमों ने सुबह-शाम के दीनी आमाल और कामों के बारे में लिखी हैं। इस सिलसिले की कुछ मशहूर किताबें नीचे दर्ज की जा रही हैं–

इमाम नसई (रह०) की अ-मलुल-यौमि वल-लै-लति और हाफ़िज़ इब्नुस्सनी (रह०) की भी एक किताब इसी नाम से है।

इमाम नववी (रह०) की किताब–'अल-अज़कार', इमाम इब्ने-तैमिया (रह०) की किताब 'अल-कलिमुत्तैयिब', उनके शागिर्द इब्ने-क़ैयिम (रह०) की किताब 'अल-वाबिलुस्सैयिब', 'अल-हिस्नुल-हसीन', 'तुहफ़तुज़्ज़ाकिरीन' और हसनुल-बन्ना (रह०) की 'मासूरात'।

इनसान का वक़्त

माज़ी (भूतकाल), हाल और मुस्तक़बिल के आईने में

वक़्त—ज़माना—की तीन क़िस्में हैं—

माज़ी (भूतकाल), हाल (वर्तमान) और मुस्तक़बिल (भविष्य)—और इनसे ताल्लुक़ रखनेवालों की भी कई क़िस्में हैं और आम तौर से लोग इस सिलसिले में भी असन्तुलन का शिकार हैं। मिसाल के तौर पर कोई माज़ी (भूतकाल) का बन्दा और गुलाम है तो कोई हाल (वर्तमान) का क़ैदी—और कोई भविष्य का हामी और अलम्बरदार है। इसमें शक नहीं कि कुछ सन्तुलित क़िस्म के लोग भी हैं जो माज़ी, हाल और मुस्तक़बिल तीनों का हक़ अदा करते हैं लेकिन इनकी तादाद बहुत थोड़ी है।

माज़ी (भूतकाल) के गुलाम

जो लोग माज़ी के ग़ुलाम हैं उनके सामने किसी दूसरे ज़माने का कोई महत्त्व ही नहीं है, वे सिर्फ़ माज़ी की याद में खोए रहते हैं, चाहे यह उनका माज़ी छिपी हुई शक्ल में हो जैसे, भटके हुए आशिक़ों का माज़ी—चाहे ख़ानदान और बाप-दादाओं की शक्ल में—ये वे लोग हैं जो हसब-नसब और माज़ी की यादों के बारे में निहायत गुलू (अतिशयोक्ति) से काम लेते हैं।

माज़ी के गुलामों की यह क़िस्म विभिन्न शक्लों में ज़ाहिर होती है :

(1) एक शक्ल उन लोगों की है जो सिर्फ़ माज़ी के कारनामों और उसके फ़ख़्र करनेवाले तज़किरों से ज़िन्दा रहते हैं, इनमें किसी क़िस्म का इज़ाफ़ा नहीं करते। वे अपने को गुज़रे हुए ज़माने से जोड़े रखते हैं और हमेशा यही कहते हैं कि हम ये थे और हमारे बाप-दादा ये और वे थे। उनके पास इन बातों के अलावा कुछ नहीं होता। इसी क़िस्म के लोगों के बारे में अरबी के मशहूर शायर 'मुतनब्बी' ने कहा है—

لَئِن فَخَرْتَ بِآبَاءِ ذَوِيْ حَسَبٍ
لَقَدْ صَدَقْتَ، وَلٰكِنْ بِئْسَ مَا وَلَدُوْا

लइन फ़ख़र-त बि-आबाइ ज़वी ह-स-बिन

लक़द सदक़-त, वलाकिन बिअ-स मा-व-ल-दू।

"अगर तुमने अपने आला नसब और बाप-दादा पर फ़ख़्र किया तो ठीक किया लेकिन उन्होंने तुम्हारी शक्ल में कितनी बुरी औलाद जनी!"

एक दूसरा शायर कहता है–

كُنْ اِبْنَ مَنْ شِئْتَ وَاكْتَسِبْ اَدَباً
يُغْنِيْكَ مَحْمُوْدُهٗ عَنِ النَّسَبِ
إِنَّ الْفَتٰى مَنْ يَّقُوْلُ: هاأَنَذَا
لَيْسَ الْفَتٰى مَنْ يَّقُوْلُ : كَانَ اَبِيْ.

कुन इब-न मन शिअ्-त वक्तसिब अ-द-बन

युग़नी-क महमूदुहू अनिन्न-स-बि

इन्नल फ़ता मँय्यक़ूलु : हा अ-न-ज़ा

लैसल-फ़ता मँय्यक़ूलु : का-न अबी।

"तुम जिसके चाहो बेटे हो जाओ, लेकिन अदब हासिल करो। इसका फ़ायदा तुम्हें नसब से बेनियाज़ कर देगा। नौजवान तो हक़ीक़त में वह है जो कहे, यह हूँ मैं, वह नौजवान नहीं है जो कहे, मेरे बाप ऐसे थे।"

इसमें कोई शक नहीं कि बाप-दादा के आसार और गुज़रे ज़माने के कारनामों पर फ़ख़्र करना एक पसन्दीदा बात है, मगर उस वक़्त जब कि यह उन कारनामों को पूरा करने का प्रेरक हो जिनका आग़ाज़ बाप-दादा ने किया

था। वरना सिर्फ़ उन कारनामों के गुण गाने पर बस करना एक ऐसा नुक़सानदेह रुख़ है। जिसका उम्मतों की तामीर में कोई किरदार नहीं है।

हक़ यह है कि वह सड़ी-गली हड्डी किस काम की जो कहे कि मैं गुज़रे हुए दिनों में एक ज़िन्दा जिस्म थी। जो गुज़र गया उसके ताल्लुक़ से मंज़ूरशुदा या तयशुदा मंज़िल वह है जिसकी ताबीर अरबी के एक शायर ने इस तरह की है–

إِنَّا وَإِنْ كَرُمَتْ أَوَائِلُنَا
لَسْنَا عَلَى الْآبَاءِ نَتَّكِلُ
نَبْنِيْ كَمَا كَانَتْ أَوَائِلُنَا
نَبْنِيْ وَنَفْعَلُ مِثْلَ مَا فَعَلُوْا.

इन-न व इन करुमत अवाइलुना
लसना अलल-आबाइ नत-तकिलु
नबनी कमा कानत अवाइलुना
नबनी व नफ़-अलु मिस-ल मा फ़-अलू

"हमारे पूर्वज अगरचे इज़्ज़त और बुज़ुर्गीवाले थे, लेकिन हम बाप-दादा पर आसरा करनेवाले नहीं हैं। हम निर्माण करेंगे जिस तरह कि हमारे पूर्वज निर्माण किया करते थे, और उन्हीं की तरह कारनामे भी अंजाम देंगे।"

(2) तुरास (माज़ी की विरासत) रखनेवालों की सूरत भी पहली ही सूरत से मिलती-जुलती है, जिनका दावा है कि बीते वक़्त से हमें जो कुछ भी विरासत में मिला है वह सब-का-सब मुक़द्दस (पाक) है, चाहे वह सही हो या ग़लत, संजीदा हो या ग़ैर-संजीदा। उनका ख़याल है कि माज़ी (भूतकाल) हमेशा हाल (वर्तमान) से बेहतर होता है और अगलों ने बाद के लोगों के लिए करने को कुछ नहीं छोड़ा है, और जो कुछ वे कर गुज़रे हैं उससे ज़्यादा करना अब मुमकिन नहीं है। हम चाहते हैं कि 'तुरास' यानी माज़ी की

विरासत का सही मतलब स्पष्ट करें और बताएँ कि माज़ी की चीज़ों को कैसे क़ायम-दायम रखा जा सकता है।

हमारे कुछ मुसलमान भाई क़ुरआन और सुन्नत (हदीस) को भी तुरास (माज़ी की विरासत) के मानी में शामिल करते हैं। यह एक ऐसा पहलू है जिसको लाज़िम कर लेने में ईमानी समझौता के मुताबिक़ हमें कोई इख़्तियार नहीं है—

"किसी ईमानवाले मर्द और किसी ईमानवाली औरत को यह हक़ नहीं है कि जब अल्लाह और उसका रसूल किसी मामले का फ़ैसला कर दे तो फिर उसे अपने उस मामले में ख़ुद फ़ैसला करने का इख़्तियार हासिल रहे।" (क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-36)

इसका मतलब यह है कि क़ुरआन और सुन्नत को मुक़द्दस मानना हमारे ईमान का तक़ाज़ा है, इसलिए तुरास (मीरास) के इस ख़ुदाई पहलू में हमारे लिए इख़्तियार और रद्द कर देने की कोई गुंजाइश नहीं है।

जहाँ तक इनसानी वरसे का ताल्लुक़ है तो उसे लाज़िमी तौर से परखा जाएगा और खरा-खोटा, स्वीकार्य और अस्वीकार्य चीज़ों में फ़र्क़ किया जाएगा। इनसानी वरसे में कुछ की हैसियत मक़ामी होती है आलमी नहीं, और उसपर उस जगह की छाप होती है जहाँ वह नमूदार होता है, इसलिए वह दूसरी जगह के लिए मुनासिब नहीं होता है। इसी तरह कुछ दूसरी चीज़ों पर अपने ख़ास ज़माने की छाप होती है और वे दूसरे ज़माने के लिए बेकार हैं।

(3) एक और शक्ल उन लोगों की है जो माज़ी (Past) में जी रहे हैं और उसे अपने सीने से लगाए हुए हैं, उसका पट्टा गले में लटकाए हुए हैं क्योंकि उनके बाप-दादा भी इसी तरीक़े पर चल रहे थे। वे इस बात की ज़रूरत बिलकुल महसूस नहीं करते कि उस गुज़रे हुए वक़्त (माज़ी) को जाँच-परखकर देखें कि क्या सच है और क्या झूठ, क्या गुमराही है और क्या हिदायत। इसी तरह के लोगों के बारे में क़ुरआन कहता है—

"और उनसे जब कहा जाता है कि अल्लाह ने जो हुक्म जारी किए

हैं उनकी पैरवी करो तो वे जवाब देते हैं कि हम तो उसी तरीक़े की पैरवी करेंगे जिसपर हमने अपने बाप-दादा को पाया है। अच्छा, अगर उनके बाप-दादा ने अक़्ल से कुछ काम न लिया हो और सीधी राह न पाई हो (तो क्या फिर भी ये उन्हीं की पैरवी किए चले जाएँगे)?" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-170)

बाप-दादा की पैरवी की इसी सोच ने पुराने ज़माने से नबियों (अलैहि॰) के सामने सबसे बड़ी रुकावट खड़ी की। इसलिए हूद (अलैहि॰) की क़ौम ने उनसे कहा—

"क्या तू हमारे पास इसलिए आया है कि हम सिर्फ़ एक अल्लाह ही की इबादत करें और उन्हें छोड़ दें जिनकी इबादत हमारे बाप-दादा करते आए हैं?" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-70)

समूद की क़ौम के लोगों ने सालेह (अलैहि॰) से कहा—

"ऐ सालेह! इससे पहले तू हमारे बीच एक ऐसा आदमी था जिससे बड़ी उम्मीदें जुड़ी हुई थीं। क्या तू हमें उन माबूदों की पूजा करने से रोकना चाहता है जिनकी पूजा हमारे बाप-दादा करते थे?"
(क़ुरआन, सूरा-11 हूद, आयत-62)

इसी तरह जब हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने अपनी क़ौम से कहा—

"ये मूर्तियाँ कैसी हैं जिनके तुम गरवीदा (आसक्त) हो रहे हो? तो उन्होंने जवाब दिया : हमने अपने बाप-दादा को इनकी इबादत करते पाया है।" (क़ुरआन, सूरा-21 अम्बिया, आयतें-52,53)

शुऐब (अलैहि॰) की क़ौम ने उनसे कहा—

"ऐ शुऐब! क्या तेरी नमाज़ तुझे यह सिखाती है कि हम उन सारे माबूदों को छोड़ दें जिनकी पूजा हमारे बाप-दादा करते थे?"
(क़ुरआन, सूरा-11 हूद, आयत-87)

क़ुरआन ने बातिल-परस्तों (मिथ्यावादियों) के इस तरीक़े को इस तरह साबित किया है—

> "इसी तरह तुमसे पहले जिस बस्ती में भी हमने कोई नज़ीर (ख़बरदार करनेवाला) भेजा, उसके खाते-पीते लोगों ने यही कहा कि हमने अपने बाप-दादा को एक तरीक़े पर पाया है और हम उन्हीं के नक़्शे-क़दम की पैरवी कर रहे हैं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, आयत-23)

क़ुरआन ने इस तरह के लोगों की सख़्त निन्दा की है, और इस रूढ़ीवादिता, बाप-दादा की पैरवी और मौरूसी रिवायतों की अंधी पैरवी को नापसन्दीदा क़रार दिया है और इन लोगों को इस तरह की नसीहत की है—

> "अच्छा, अगर इनके बाप-दादा ने अक़्ल से कुछ भी काम न लिया हो और सीधा रास्ता न पाया हो (तो क्या फिर भी ये उन्हीं की पैरवी किए चले जाएँगे)?" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-170)
>
> "(क्या ये लोग बाप-दादा ही की पैरवी किए चले जाएँगे,) चाहे वे कुछ न जानते हों और सही रास्ते की उन्हें ख़बर ही न हो?"
>
> (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-104)
>
> "हर नबी ने उनसे पूछा : (क्या तुम उसी रास्ते पर चलते चले जाओगे) चाहे मैं तुम्हें उस रास्ते से ज़्यादा सही रास्ता बताऊँ जिसपर तुमने अपने बाप-दादा को पाया है?"
>
> (क़ुरआन, सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, आयत-24)

(4) माज़ी (Past) में जीनेवालों में एक तस्वीर उन लोगों की भी है जो हमेशा अपने माज़ी (भूतकाल) पर शर्मिन्दगी का इज़हार करते रहते हैं और गुज़रे हुए पलों पर अफ़सोस के साथ हाथ मलते रहते हैं। उनकी ज़बान पर हमेशा हसरत और आरज़ू के अलफ़ाज़ जारी रहते हैं—काश कि मैंने ऐसा किया होता! काश मैंने ऐसा न किया होता! अगर मैंने इसको पहले किया होता और इसको बाद में करता तो ऐसा और ऐसा होता!

इस तरह की समझ और फ़िक्र इनसान को हमेशा नफ़सियाती तौर पर जकड़े रहती है और ऐसी बेचैनी के आलम में उसे ज़िन्दा रखती है जिसका न तो कोई तोड़ है, न कोई फ़ायदा। इसी लिए कहा गया है कि गुज़रे वक़्त

के बेकार जाने की फ़िक्र में पड़ना आनेवाले वक़्त को बरबाद करना है।

क़ुरआन और सुन्नत ने भी इस तरह की सोच की निन्दा की है, चुनाँचे उहुद की जंग में जब मुसलमानों को चोटें आईं तो उस सूरते-हाल पर तबसिरा करते हुए अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, काफ़िरों की-सी बातें न करो जिनके सगे-सम्बन्धी अगर कभी किसी सफ़र पर जाते हैं या जंग में शामिल होते हैं (और वहाँ कोई हादसा उनको पेश आ जाता है) तो वे कहते हैं कि अगर वे हमारे पास होते तो न मारे जाते और न क़त्ल होते। अल्लाह ऐसी बातों को उनके दिलों में पछतावा और ग़म का सबब बना देता है, वरना अस्ल में मारने और जिलानेवाला तो अल्लाह है। और तुम्हारी सारी हरकतों को वह देख रहा है।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-156)

अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"ताक़तवर ईमानवाला (मोमिन) बेहतर है और अल्लाह के नज़दीक कमज़ोर ईमानवाले से ज़्यादा पसन्दीदा है, वैसे कुल मिलाकर भलाई हर एक में है, तुम उन चीज़ों के लोभी बनो, जो तुम्हारे लिए फ़ायदा पहुँचानेवाली हों, और अल्लाह से मदद माँगो तो कभी मक़सद के हासिल करने में लाचार नहीं रहोगे। और यह न कहो कि अगर मैंने ऐसा किया होता तो ऐसा होता, बल्कि यह कहो कि यह अल्लाह का फ़ैसला है और उसने जो चाहा किया। इसलिए कि 'अगर' का शब्द शैतानी अमल का दरवाज़ा खोलता है।" (हदीस : मुस्लिम)

अल्लाह की तक़दीर और उसके फ़ैसले पर ईमान इनसान के अन्दर एक ऐसी ज़बरदस्त ताक़त पैदा कर देता है जो 'अगर' और 'काश' की जड़ को निकाल बाहर करता है, और उसे भविष्य (Future) के लिए, मुसबत (सकारात्मक) अमल व तामीर पर उभारता है।

मुस्तक़बिल (भविष्य) के पुजारी

माज़ी (गुज़रे हुए ज़माने) के परस्तारों के मुक़ाबले में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो हद से गुज़र जाने तक मुस्तक़बिल से चिमटे हुए और माज़ी से कटे हुए हैं। उन्हें अपने और इनसानियत के इतिहास से कोई दिलचस्पी नहीं है। वे लोग हक़ और बातिल, हलाल और हराम और फ़ायदेमन्द और नुक़्सानदेह में कोई फ़र्क़ और पहचान किए बिना दीनी और तहज़ीबी सरमाए का पूरी तरह इनकार करते हैं।

उनका कहना है कि हमें उन बाप-दादा से क्या वास्ता जो मर गए हैं। हमें तो उन नौजवानों की तलाश है जो कल के मर्द होंगे।

वे कहते हैं कि हमारी आँखें हमारी गुद्दियों में नहीं बनाई गई हैं कि हम पीछे की तरफ़ देखें, बल्कि हमारे चेहरों पर हैं ताकि हम आगे की तरफ़ देखें। आख़िर तुम लोग हमें पीछे क्यों दिखाना चाहते हो, यही चीज़ हमारे लिए मंज़िले-मक़सूद (अभीष्ट लक्ष्य) की तरफ़ बढ़ने की राह में सबसे बड़ी रुकावट है।

लेकिन यह बात उस वक़्त न सिर्फ़ यह कि हक़ (सत्य) नहीं होगी बल्कि उस हक़ के ज़रिए बातिल (झूठ) मक़सूद होगा, जब उसका मक़सद यह हो कि गुज़रे हुए ज़माने को बिलकुल भुला दिया जाए, क़ौमी पूँजी को बिलकुल अनदेखा कर दिया जाए और इतिहास को मलियामेट कर दिया जाए—हालाँकि इतिहास में बहुत-से सबक़-आमोज़ और इबरतनाक वाक़िए मौजूद होते हैं जिनसे अक़्ल और शुऊर को रहनुमाई मिलती है। अल्लाह तआला ने अपनी किताब क़ुरआन में गुज़रे हुए ज़माने और उसके इबरतअंगेज़ वाक़िआत से फ़ायदा उठाने पर ज़ोर देते हुए कितनी सच्ची बात बताई है—

> "क्या ये लोग ज़मीन में चले-फिरे नहीं हैं कि इनके दिल समझनेवाले और इनके कान सुननेवाले होते? हक़ीक़त यह है कि आँखें अन्धी नहीं होतीं मगर वे दिल अन्धे हो जाते हैं जो सीनों में हैं।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-46)

मुस्तक़बिल (भविष्य) का नकारात्मक नज़रिया अपशगुन और मायूसी का नज़रिया

कुछ लोग मुस्तक़बिल (भविष्य) के सिलसिले में सख़्त मायूसी और अपशगुनी का शिकार रहते हैं। उन्होंने अपनी आँखों पर काला चश्मा चढ़ा रखा है, जिसके ज़रिए से उन्हें ज़िन्दगी के हर दौर में और वक़्त के हर गोशे में मायूसी और नाउम्मीदी के गहरे साए ही नज़र आते हैं। उनको न मुस्तक़बिल पर भरोसा है और न उसमें कामयाबी की कोई किरण ही दिखाई देती है। उनके दिलों में यह बात बैठ गई है कि मामलात हमेशा बद से बदतर और बदतर से बदतरीन ही की तरफ़ चलते हैं। उनके नज़दीक ज़िन्दगी एक ऐसी रात है जिसकी कोई सुबह नहीं और उसकी तारीकियों (अँधेरों) को दूर करनेवाला कोई सूरज नहीं है।

बेशक यह एक ऐसा तबाह व बरबाद करनेवाला नज़रिया है जो इनसान को हमेशा-हमेशा के लिए मायूसी के गढ़े में धकेल देता है और नतीजे में आदमी और समाज दोनों बरबाद हो जाते हैं। इसलिए कि जिस समाज के लोगों पर मायूसी छाई हुई हो उसमें तरक़्क़ी और ज़िन्दगी के आसार कहाँ से नज़र आएँगे!

इनसान की ज़िन्दगी में उम्मीद की किरण न हो तो वह अँगूठी के छेद से ज़्यादा तंग हो जाती है। इसी लिए पुराने ज़माने का एक शायर कहता है—

مَا أَضْيَقُ الْعَيْشُ لَوْلَا فُسْحَةُ الْأَمَلِ

मा अज़-यक़ुल-ऐशु लौ-ला फ़ुस-हतुल-अ-मलि

"अगर उम्मीद की कुशादगी न होती तो ज़िन्दगी कितनी तंग हो जाती!"

हक़ीक़त यह है कि मज़हब, इतिहास और वाक़िआत सब-के-सब हमें बताते हैं कि ज़िन्दगी में मायूसी का कोई तसव्वुर (कल्पना) नहीं, इसी तरह

मायूसी के साथ ज़िन्दगी का कोई तसव्वुर नहीं—इन्हीं चीज़ों से हमें यह भ
मालूम होता है कि दुनिया में किसी हाल (स्थिति) का हमेशा बाक़ी रहना एव
नामुमकिन बात है। यहाँ दुशवारी के साथ आसानी है और रात के अन्धें
के साथ सुबह का उजाला है। अल्लाह तआला का इरशाद है—

"अल्लाह की रहमत से तो बस ख़ुदा के इनकारी ही मायूस हुआ करते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-12 यूसुफ़, आयत-87)

एक दूसरी जगह अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"और अपने रब की रहमत से तो मायूस गुमराह लोग ही हुआ करते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-15 हिज्र, आयत-56)

मायूसी की सूरतों और अपशगुनी के ज़ाहिर होनेवाली चीज़ों में से एव
यह भी है कि बहुत-से लोग यह मानकर चलते हैं कि हम आज आख़िर
ज़माने में हैं और क़ियामत के आसार (लक्षण) ज़ाहिर हो चुके हैं। भलाइयं
मिट रही हैं, बुराइयाँ परवान चढ़ रही हैं। दीनदारी का चिराग़ दिन-ब-दिन
धीमा पड़ता जा रहा है, किसी भी वक़्त बुझ सकता है। कुफ़्र (अधर्म) ज़मीन
पर आम होता जा रहा है और क़ियामत भी सत्य के इनकारियों ही पर क़ायम
होगी। इसलिए अब इस मौजूदा परिस्थिति में न इलाज से कोई फ़ायदा है
और न इस्लाह की कोई उम्मीद।

वे लोग इस मायूस करनेवाले नज़रिए के लिए उन हदीसों से दलील पेश
करते हैं जो फ़ितनों और क़ियामत की निशानियों के सिलसिले में बयान हुइ
हैं।

हालाँकि मामला वैसा नहीं है जैसा कि इन लोगों ने समझ लिया है
क़ुरआन और हदीस में जो हुक्म क़ियामत के क़रीब होने या उनकी
निशानियों के सिलसिले में बयान हुए हैं, उनका मतलब यह नहीं है कि वह
दरवाज़े पर आ लगी है। क़रीब होना या दूर होना एक ताल्लुक़ाती मामला
है। इसका इल्म तो सिर्फ़ अल्लाह ही को है, और यह भी मुमकिन है कि वह
हमारे तसव्वुर से भी ज़्यादा क़रीब हो। क़ुरआन ने सिर्फ़ इतना कहा है—

"शायद कि क़ियामत क़रीब ही आ लगी हो।"

(क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-63)

"शायद कि क़ियामत क़रीब हो।"

(क़ुरआन, सूरा-42 शूरा, आयत-17)

एक दूसरी जगह फ़रमाया–

"वह तुमपर अचानक आ जाएगी।"

(क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-187)

हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) का भेजा जाना भी क़ियामत की निशानियों में से है। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"मैं और क़ियामत इन दोनों की तरह भेजे गए हैं"...और फिर आप (सल्ल॰) ने अपनी शहादत की उँगली और बीच की उँगली को एक-दूसरे से मिलाकर इशारा किया। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

क़ियामत के इन्तिज़ार में इस्लामी शरीअत, मुस्लिम समुदाय और इस्लामी हुकूमत को ज़िन्दा रखने के अमल से ग़ाफ़िल होकर बैठ जाना और यह समझ लेना कि हम तो आख़िरी ज़माने में हैं, एक ऐसा रवैया है जिसे दीने-इस्लाम सख़्त नापसन्द करता है। मुसलमान एक व्यक्ति की हैसियत से हमेशा अमल करने और संघर्ष के लिए तैनात है जब तक वह ज़िन्दा है और सारे मुसलमान एक समुदाय की हैसियत से इस काम पर तैनात हैं उस वक़्त तक जब तक कि तौबा का दरवाज़ा बन्द न हो जाए और ऐसा दुनिया की उम्र की आख़िरी घड़ी में होगा जब इस दुनिया का निज़ाम दरहम-बरहम हो जाएगा और सूरज बजाय पूरब के पश्चिम से निकलेगा। अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"जिस रोज़ तुम्हारे रब की कुछ ख़ास निशानियाँ नमूदार हो जाएँगी, फिर किसी ऐसे शख़्स को उसका ईमान कुछ फ़ायदा न देगा जो पहले ईमान न लाया हो, या जिसने अपने ईमान में कोई भलाई न कमाई हो।" (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-158)

नबी (सल्ल॰) से रिवायत है कि आप (सल्ल॰) ने दुनियावी अमल को आख़िरी साँस तक जारी रखने का हुक्म दिया है, वह अमल चाहे कितना ही

मामूली क्यों न हो। आप (सल्ल॰) ने कहा—

> "अगर क़ियामत क़ायम हो जाए और तुममें से किसी के हाथ में खजूर का पौधा हो और उसे अपनी जगह से उठने से पहले लगा सकता हो, तो लगा दे।" (हदीस : अहमद, बुख़ारी)

जब मुसलमान को इस बात का हुक्म दिया गया है कि वह सूर (नरसिंघा) की आवाज़ सुनने के बाद भी पौधा लगाना न छोड़े और मुमकिन हद तक अपने काम को पूरा करे, हालाँकि उस पौधा लगाने का फ़ायदा न उसे होगा और न उसके बाद दूसरे किसी शख़्स को होगा, तो फिर हम मायूस होकर अमल (कर्म) करना क्यों छोड़ दें जबकि हमारे और क़ियामत के बीच नामालूम मुद्दतें हैं, जिनकी मीआद का इल्म अल्लाह के अलावा किसी को नहीं है।

अमल अपने-आप में ख़ुद मतलूब है, चाहे अमल करनेवाले को उसका कोई फ़ायदा तुरन्त न मिले—अगर अमल (काम) के साथ उसका फल भी मिल गया तो मानो वह दोहरी कामयाबी से मालामाल हो गया, और अगर ऐसा न हुआ तो उसके लिए यही काफ़ी है कि उसने कोशिश की और अमल करने में कोई कसर न छोड़ी और अपनी ज़िम्मेदारी अदा करके अल्लाह के नज़दीक बरी हो गया और विरोधियों पर भी हुज्जत पूरी कर दी जिनका कोई बहाना अल्लाह के यहाँ क़बूल न होगा।

हम इस सिलसिले में कुछ हदीसें नक़्ल कर रहे हैं जिनसे बात पूरी तरह वाज़ेह हो जाएगी।

1. अली (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मेरे बाद ऐसे फ़ितने सिर उठाएँगे जो अँधेरी रात के टुकड़ों की तरह होंगे।" (यह सुनकर) मैंने पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! फिर उनसे नजात पाने का तरीक़ा क्या है?" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "अल्लाह की किताब, (यानी अल्लाह की किताब को अगर तुम पकड़े रहोगे और उसपर अमल करते रहोगे तो तुम उन फ़ितनों से नजात यानी छुटकारा पा सकते हो) इसलिए कि इसमें तुमसे पहले

के लोगों के हालात भी हैं और उन बातों की भी ख़बर दी गई है जो तुम्हारे बाद पेश आनेवाली हैं (यानी क़ियामत की निशानियाँ और उस वक़्त के फ़ितनों से भरे हालात), और इसमें वे अहकाम (आदेश) भी बयान किए गए हैं जिनका ताल्लुक़ तुम्हारे मामलात से है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

2. अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"नेक कामों में जल्दी करो, क्योंकि जल्द ही ऐसे फ़ितने सिर उठानेवाले हैं जो अन्धेरी रात के टुकड़ों की तरह होंगे। (और इन फ़ितनों का असर यह होगा कि) आदमी सुबह को ईमान की हालत में उठेगा और शाम को कुफ़्र करनेवाला बन जाएगा, और शाम को ईमानवाला होगा तो सुबह कुफ़्र (इनकार) की हालत में बदल चुका होगा, और अपने दीन व मज़हब को दुनिया की बहुत ही मामूली चीज़ के बदले बेच डालेगा।" (हदीस : मुस्लिम)

3. अबू-सअलबा ख़ुशनी (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"तुम्हारे बाद (आख़िरी ज़माने में) ऐसे दिन आनेवाले हैं जिनमें सब्र करना ज़रूरी होगा, और उन दिनों में सब्र करना हाथ में अंगारा पकड़ने जैसा होगा, और उन दिनों में जो आदमी दीन और शरीअत के हुक्मों पर अमल करेगा उसको उन पचास लोगों के बराबर सवाब मिलेगा जो उस आदमी जैसा अमल करें।" हज़रत अबू-सअलबा (रज़ि॰) कहते हैं कि मैंने (ताज्जुब से) पूछा कि एक आदमी को उनके पचास आदमियों के बराबर सवाब मिलेगा!! आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया : "(बल्कि) तुम्हारे पचास आदमियों के बराबर।"

(हदीस : अबू-दाऊद, तिरमिज़ी, इब्ने-माजा)

कुछ दूसरी रिवायतों में नबी (सल्ल॰) ने अपने क़ौल (कथन) के ज़रिए इस अज्र (बदले) को बढ़ाने की वजह भी बताई है। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"तुम ख़ैर और भलाई के कामों में बहुत-से साथी और मददगार पाते हो, और उनको ख़ैर और भलाई के काम में कोई साथी और मददगार न मिलेगा।"

4. इमाम बुख़ारी (रह॰) और इमाम मुस्लिम (रह॰) दोनों ने हज़रत हुज़ैफ़ा-बिन-यमान (रज़ि॰) से यह रिवायत बयान की है कि उन्होंने फ़रमाया, "लोग तो (अकसर) नबी (सल्ल॰) से ख़ैर, भलाई और नेकी के बारे में पूछा करते थे और मैं आप (सल्ल॰) से शर और बुराई के बारे में मालूम किया करता था, इस डर से कि कहीं मैं उसमें गिरफ़्तार न हो जाऊँ। (एक दिन अपनी उसी आदत के मुताबिक़) मैंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! हम लोग (इस्लाम से पहले) जाहिलियत और बुराई में पड़े हुए थे, फिर अल्लाह ने हमें हिदायत और भलाई (इस्लाम की रौशनी) अता की, तो क्या इस हिदायत और भलाई के बाद और कोई बुराई पेश आनेवाली है?"

आप (सल्ल॰) ने फ़रमया, "हाँ।" मैंने पूछा, "तो क्या उस बुराई के बाद फिर हिदायत और भलाई का ज़ुहूर होगा।" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "हाँ! लेकिन उस बुराई के बाद जो भलाई आएगी उसमें धुवाँ यानी कदूरत (गदलापन) होगी।" मैंने मालूम किया कि उस भलाई की कदूरत (मलीनता) क्या होगी? कहा, "(इससे मुराद यह है कि) ऐसे लोग पैदा होंगे जो मेरे तरीक़े और मेरी रविश (नीति) के ख़िलाफ़ तरीक़ा और रविश इख़्तियार करेंगे। लोगों को मेरे बताए हुए रास्ते के ख़िलाफ़ चलाएँगे। उनकी कोई बात अच्छी (शरीअत के मुताबिक़) होगी और कोई बुरी (शरीअत के ख़िलाफ़)।" मैंने पूछा, "क्या उस भलाई के बाद फिर कोई बुराई पेश आएगी?" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "हाँ, ऐसे लोग पैदा होंगे जो जहन्नम के दरवाज़े पर खड़े होकर लोगों को (अपनी तरफ़) बुलाएँगे, जो शख़्स उनकी पुकार पर 'मैं हाज़िर हूँ' कहते हुए जहन्नम की तरफ जाना चाहेगा उसको वे जहन्नम में धकेल देंगे।" मैंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! उन लोगों की पहचान बताइए (ताकि हम उनको पहचान लें)।" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "वे हमारी क़ौम (हमारे हम-जिन्स और हमारी मिल्लत के लोगों) में से होंगे और हमारी ज़बान में बातें करेंगे।"

देखा आपने कि ये हदीसें किस तरह बुराई और फ़ितने से होशियार कर ही हैं और भलाई की तरफ़ उकसा रही हैं। हक़ पर जमे रहने की ताकीद कर रही हैं, अल्लाह की किताब को मज़बूती से थामने पर ज़ोर दे रही हैं और उन बुराई की तरफ़ बुलानेवालों का मुक़ाबला करने के लिए आमादा कर रही हैं जो जहन्नम के दरवाज़े पर खड़े हैं, जो उनकी दावत पर "मैं हाज़िर हूँ" कहेगा, उसको वे उसमें फेंक देंगे।

मुस्तक़बिल को आरज़ुओं और ख़ाबों से सजानेवाले

जिस तरह उम्मीदी और नाउम्मीदी का नज़रिया (दृष्टकोण) आनेवाले कल का एक तबाहकुन नज़रिया है, उसी मुस्तक़बिल यानी आनेवाले कल का एक दूसरा तबाहकुन नज़रिया यह भी है कि आदमी आनेवाले कल का सामना इल्म और अमल की तैयारी और मज़बूत मंसूबाबन्दी के बजाय सिर्फ़ आरज़ुओं और ख़ाबों के ज़रिए से करे। हालाँकि तमन्नाओं से न किसी को कोई इज़्ज़त और मर्तबा मिला है और न किसी की कोई उम्मीद पूरी हुई है, बल्कि कअ़ब-बिन-ज़ुहैर (रज़ि०) के मुताबिक़—"आरज़ुएँ और ख़ाब गुमराही का ज़रिआ हैं।"

एक शख़्स ने इब्ने-सीरीन (रह०) से कहा, "मैंने ख़ाब देखा है कि मैं बग़ैर पानी के तैर रहा हूँ और बिना पंख के उड़ रहा हूँ।" यह ख़ाब सुनकर उन्होंने फ़रमाया, "तुम आरज़ुओं और ख़ाबों की जन्नत में रहनेवाले आदमी हो।"

हज़रत अली (रज़ि०) ने अपने बेटे को नसीहत करते हुए फ़रमाया, "ख़बरदार! आरज़ुओं पर कभी भरोसा न करना, ये बेवक़ूफ़ों की पूँजी है।"

एक शायर कहता है—

وَلَا تَكُنْ عَبْدَ الْمُنٰى فَالْمُنٰى
رُؤُوْسُ أَمْوَالِ الْمَفَالِيْسِ

वला तकुन अब्दल-मुना फ़ल-मुना
रुऊसु अमवालिल-मफ़ालीसि

आरज़ुओं के बन्दे न बनो, क्योंकि आरज़ुएँ तो मुफ़लिसों का सरमाया है।

इसमें शक नहीं कि क़ुरआन ने अहले-किताब (यहूदी और ईसाइयों) की सिर्फ़ इसी लिए मज़म्मत की है कि उन्होंने ईमान और अमल के ज़रूरी असबाब के बिना जन्नत में जाने की आरज़ू अपने दिल में बिठा ली थी, इसी लिए अल्लाह तआला ने उनके हाल पर तबसिरा (टिप्पणी) करते हुए फ़रमाया—

"उनका कहना है कि कोई जन्नत में न जाएगा जब तक कि वह यहूदी न हो या (ईसाइयों के ख़यालात के मुताबिक़) ईसाई न हो। ये उनकी तमन्नाएँ हैं। इनसे कहो, अपनी दलील पेश करो अगर तुम अपने दावे में सच्चे हो। (अस्ल में न तुम्हारी कुछ ख़ुसूसियत है, न किसी और की) हक़ (सच) यह है कि जो भी अपनी हस्ती को अल्लाह की फ़रमाँबरदारी में सौंप दे और अमली तौर पर नेक राह पर चले, उसके लिए उसके रब के पास उसका अच्छा बदला है, और ऐसे लोगों के लिए किसी ख़ौफ़ या रंज का कोई मौक़ा नहीं है।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयतें-111,112)

क़ुरआन ने इस सिलसिले में सिर्फ़ अहले-किताब की मज़म्मत करने पर बस नहीं किया है, बल्कि उनके साथ उन मुसलमानों को भी शामिल किया है जो उनके नक़्शे-क़दम पर चलें और गुमान कर लें कि सिर्फ़ इस्लामी नाम से निस्बत (ताल्लुक़) अल्लाह के नज़दीक नजात के लिए काफ़ी होगी। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"अंजामकार न तुम्हारी आरज़ुओं (कामनाओं) पर निर्भर है, न अहले-किताब की आरज़ुओं पर। जो भी बुराई करेगा उसका फल पाएगा और अल्लाह के मुक़ाबले में अपने लिए कोई सहायक और मददगार न पा सकेगा। और जो नेक काम करेगा, चाहे मर्द हो या औरत, शर्त यह है कि हो वह ईमानवाला, तो ऐसे ही लोग जन्नत में दाख़िल होंगे और उनका रत्ती-भर भी हक़ न मारा जाएगा।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयतें-123,124)

बेशक क़ुरआन ने आरज़ुओं पर भरोसा करने की बहुत ज़्यादा मज़म्मत (निन्दा) की है, मगर वह उम्मीद और आरज़ू का मुख़ालिफ़ (विरोधी) नहीं है और उसने इन दोनों चीज़ों के बीच फ़र्क़ किया है। उम्मीद का सम्बन्ध हमेशा अमल से जुड़ा होता है और इसके बरख़िलाफ़ जो है वह सब आरज़ू है।

नबी (सल्ल॰) की हदीस ने भी अल्लाह की सिफ़त (विशेषता)— दरगुज़र और माफ़ी और रहमत की वुसअत पर भरोसा करके ख़ाहिशों के पीछे भागने और नफ़्स (मन) की पैरवी करने को बेवक़ूफ़ी क़रार दिया है।

अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"बेशक अल्लाह की रहमत नेक काम करनेवालों से क़रीब है।"

(क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-56)

एक दूसरी जगह फ़रमाता है—

"मेरी रहमत हर चीज़ पर छाई हुई है, और उसे मैं उन लोगों के हक़ में लिखूँगा जो नाफ़रमानी से परहेज़ करेंगे, ज़कात देंगे और मेरी आयतों पर ईमान लाएँगे।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-156)

इस सिलसिले में अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) का कथन है—

"होशियार और समझदार वह शख़्स है जिसने अपने नफ़्स (मन) को क़ाबू में रखा और आख़िरत के लिए अमल किया और वह शख़्स बेबस और कमज़ोर है जिसने अपने को मन की ख़ाहिशों के पीछे लगा दिया और अल्लाह से झूटी तमन्नाएँ बाँधकर रखीं।"

उम्मीद और उम्मीद करनेवालों की तारीफ़ और ख़ूबी क़ुरआन ने इन लफ़्ज़ों में बयान की है—

"जो लोग ईमान लाए हैं और जिन्होंने अल्लाह की राह में अपना घर-बार छोड़ा और जिहाद किया है, वे अल्लाह की रहमत के जाइज़ उम्मीदवार हैं और अल्लाह उनकी कोताहियों को माफ़ करनेवाला और अपनी रहमत से उन्हें नवाज़नेवाला है।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-218)

कुछ बुज़ुर्गों का क़ौल है कि बग़ैर अमल जन्नत की ख़्वाहिश गुनाह है, सुन्नत की पैरवी के बिना शिफ़ाअत की उम्मीद सरासर धोखा है और गुनाह के बावजूद अल्लाह की रहमत की उम्मीद रखना हिमाक़त और जिहालत है।

हसन बसरी (रह०) का कहना है—

"कुछ लोगों को मग़फ़िरत (माफ़ी) की आरज़ू ने इस तरह ग़ाफ़िल कर रखा है कि वे दुनिया से इस हाल में गए कि उनके पास कोई नेकी नहीं थी। उनमें एक कहता है कि मुझे अपने रब से खुशगुमानी है, हालाँकि उसने झूठ कहा, अगर वह वाक़ई अपने रब के साथ अच्छा गुमान रखता तो उसके लिए अमल भी अच्छा करता।"

फिर उन्होंने क़ुरआन मजीद की यह आयत तिलावत की—

"तुम्हारा यही गुमान जो तुमने अपने रब के साथ किया था, तुम्हें ले डूबा और उसी की बदौलत तुम घाटे में पड़ गए।"

(क़ुरआन, सूरा-41 हा०मीम० सजदा, आयत-23)

हसन बसरी (रह०) यह भी कहा करते थे कि ऐ लोगो, इन आरज़ुओं (तमन्नाओं) से होशियार रहो, इसलिए कि ये बेवक़ूफ़ों की वादियाँ हैं और वे इसी में उतारे जाएँगे। अल्लाह की क़सम! अल्लाह ने किसी बन्दे को आरज़ू (तमन्ना) के ज़रिए से न दुनिया में कोई भलाई दी और न आख़िरत में कोई भलाई देगा।

वर्तमान समय के दीवाने

कुछ लोग ऐसे भी है जो न गुज़रे हुए वक़्त पर नज़र रखते हैं और न भविष्य की आरज़ू करते हैं, बल्कि वे अपने आज के दिन से मतलब रखते हैं। और उसी आज के लिए जीते हैं। उनके ख़याल में जो वक़्त गुज़र गया उसका वुजूद मिट गया और जो चीज़ मिट गई उस में अपने ज़ेहन और दिमाग़ को लगाए रखने और उसके मुताबिक़ सोचने का कोई फ़ायदा नहीं है।

इसी तरह भविष्य (आनेवाला समय) उनकी नज़र में ग़ैब (परोक्ष) है और ग़ैब बेकार और नामालूम चीज़ है। इसलिए उनके ख़याल में हक़ीक़त पसन्द (यथार्थवादी) इनसान को नामालूम चीज़ से वास्ता नहीं रखना चाहिए, इसलिए कि इससे वास्ता रखना रेत पर महल बनाने और हवा में लिखने के बराबर है।

इन लोगों को इनके हाल (वर्तमान) की रंगीनियों ने इतना ग़ाफ़िल और बेख़बर कर दिया है कि इन्हें न अपने मुस्तक़बिल (भविष्य) के बारे में सोचने का वक़्त है और न अपने बीते हुए समय से फ़ायदा उठाने की परवाह।

वे लोग सिर्फ़ वक़्त के ग़ुलाम हैं, वे आख़िरत की फ़िक्र नहीं करते, इसलिए कि वह भी मुस्तक़बिल (भविष्य) है। वे लोग नक़द को उधार से और जल्दी को देर से नहीं बेचते। उन्हें इतिहास और क़ौमी सरमाए से कोई दिलचस्पी नहीं होती, क्योंकि वे गुज़रे हुए ज़माने की चीज़ें हैं। और उनके वक़्त के ग़ुलाम होने का मतलब यह है कि वे लोग सिर्फ़ मौजूदा लम्हों यानी वर्तमान की फ़िक्र करते हैं और उन्हीं का बन्दोबस्त करते हैं और उन्हीं में ख़ूब ऐश करते हैं। वे बीते दिनों के ज़िक्र और आनेवाले दिनों की फ़िक्र से अपनी ज़िन्दगी को बे-मज़ा नहीं करना चाहते।

जब इनसान का अपना वक़्त सिर्फ़ वही है जिसमें वह मौजूद है तो फिर क्यों वह उसे बरबाद करता है और क्यों नहीं उसे अल्लाह की फ़रमाँबरदारी में लगाता है? और उस वक़्त का इस्तेमाल इस्लाम को फैलाने, अच्छे काम करने और आम इनसानों की भलाई के कामों में क्यों नहीं करते?

सही बात यह है कि अगर हाज़िर (वर्तमान) का तजज़िया (विश्लेषण) और उसपर ग़ौरो-फ़िक्र किया जाए तो उसकी हैसियत गुज़रे हुए और आनेवाले वक़्त के बीच एक काल्पनिक रेखा की है। इसी बुनियाद पर कुछ शायर कहते हैं—

مَا الدَّهْرُ إِلَّا سَاعَتَانِ: تَأَمُّلٌ
فِيْمَا مَضَى وَتَفَكُّرٌ فِيْمَا بَقِيَ.

मद्दहरु इल्ला सा-अतानि : तअम्मुलुन

फ़ी मा म-ज़ा व तफ़क्कुरुन फ़ी मा बक़ि-य

"ज़माना इबारत है दो वक़्तों से। माज़ी जो ग़ौरो-फ़िक्र का तालिब है और मुस्तक़बिल जो मंसूबाबन्दी का तालिब है।"

इस शायर ने हाल (वर्तमान) का तसव्वुर ही ख़त्म कर दिया, लेकिन उसे जानना चाहिए कि आम हालत में हाज़िर (हाल) वह मौजूदा लम्हा होता है जो मुस्तक़बिल के क़रीबी जुज़ से बिलकुल जुड़ा हुआ होता है, और इनसान यह समझता है कि मानो वह अमली तौर पर हाज़िर हो गया है।

ज़माने से मुताल्लिक़ सही नज़रिया

ज़माने से मुताल्लिक़ इस्लाम का ही नज़रिया भूत (Past), वर्तमान
?resent) और भविष्य (Future) सबकी भरपूर रिआयत करता है। यह
ापकता इस्लाम के अलावा किसी भी मज़हब या धर्म में नहीं है।

ूतकाल के तसव्वुर की ज़रूरत

भूतकाल (Past) का तसव्वुर इसलिए ज़रूरी है कि इसके हादसों और
टनाओं में और इसमें गुज़री हुई क़ौमों के अंजाम में इबरत और नसीहत
ा सामान है। इस सूरत में हम कह सकते हैं कि गुज़रा ज़माना हमारे लिए
बरत (शिक्षा) और नसीहत का ख़ज़ाना है। चुनाँचे अल्लाह तआला
रमाता है—

"तुमसे पहले बहुत से दौर गुज़र चुके हैं, ज़मीन में चल-फिरकर देख लो कि उन लोगों का क्या अंजाम हुआ जिन्होंने (अल्लाह के हुक्मों और हिदायतों को) झुठलाया। यह लोगों के लिए एक साफ़ और वाज़ेह तम्बीह है और जो अल्लाह से डरते हों उनके लिए हिदायत और नसीहत।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयतें-137,138)

फिर इसी सूरा में एक आयत के बाद कहा गया है—

"इस वक़्त अगर तुम्हें चोट लगी है तो इससे पहले ऐसी ही चोट तुम्हारे मुख़ालिफ़ फ़रीक़ को भी लग चुकी है। ये तो ज़माने के उतार-चढ़ाव हैं जिन्हें हम लोगों के बीच गरदिश देते रहते हैं।"
(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-140)

इसी सूरा में आगे फ़रमाया गया—

"इससे पहले कितने ही नबी ऐसे गुज़र चुके हैं जिनके साथ मिलकर बहुत-से ख़ुदापरस्तों ने जंग की। अल्लाह के रास्ते में जो मुसीबतें उनपर पड़ीं उनसे वे बददिल नहीं हुए। उन्होंने कमज़ोरी नहीं दिखाई, उन्होंने (झूठ के आगे) सिर नहीं झुकाया। ऐसे ही सब्र

करनेवालों को अल्लाह पसन्द करता है।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-146)

एक और जगह फ़रमाया—

"क्या ये लोग ज़मीन पर चले-फिरे नहीं हैं कि इनके दिल समझनेवाले और इनके कान सुननेवाले होते? हक़ीक़त यह है कि आँखें अन्धी नहीं होतीं मगर वे दिल अन्धे हो जाते हैं जो सीनों में हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-46)

फिर इस पहलू से भी बीते समय की अहमियत है कि गुज़रे हुए लोग ने आनेवाली नस्लों के लिए जो इल्म और फ़न छोड़े हैं, उनसे फ़ायदा उठाय जाए, और उनमें से जो कुछ हमारे ज़माने और हालात के मुताबिक़ हो उर इख़्तियार किया जाए।

हर पुरानी (प्राचीन) चीज़ को सिर्फ़ इस बुनियाद पर छोड़ देना कि वह बहुत पुरानी है, ठीक नहीं। कुछ चीज़ें ऐसी हैं जो बहुत पुरानी तो समझ जाती हैं, लेकिन फिर भी उनकी कुछ नुमायाँ ख़ासियतें होती हैं और वे अपन मिज़ाज के एतिबार से नवीनता को स्वीकार नहीं करतीं।

क्या क़ुरआन की यह ख़ूबी नहीं है कि वह कलामुल्लाह (वाणी) है औ एक लम्बा वक़्त गुज़र जाने के बाद भी न तो उसके नएपन में कोई फ़र्क़ आया है और न उसपर पुरानेपन का ही कोई असर है?

क्या अल्लाह के घर काबा की ख़ासियत और फ़ज़ीलत नहीं है कि वह 'प्राचीन घर' है, मगर सदियों से लोग लगातार उसके लिए सफ़र करते हैं न क़ुरआन की तजदीद (नवीनीकरण) होगी और न अल्लाह के घर की इसलिए कि सच्चाइयों का नवीनीकरण नहीं होता।

तजदीद (नवीनीकरण) के समर्थकों ने हर क़दीम (पुरानी चीज़) क अनदेखा करके और हर नई चीज़ की ताईद करके बड़ी ज़्यादती की है हालाँकि कुछ क़दीम चीज़ें बड़ा फ़ायदा लिए हुए हैं और कई नई चीज़ें बड़ नुक़सान का सबब होती हैं। अरबी के मशहूर इस्लामपसन्द अदीब मुस्तफ़ सादिक़ अर्राफ़िई इन तजदीद के समर्थकों का मज़ाक़ उड़ाते हुए कहते हैं—

"ये लोग दीन, ज़बान, सूरज और चाँद सबकी तजदीद (नवीनीकरण) चाहते हैं।"

ग़ौर करने लायक़ बात यह है कि क़दीम (प्राचीन) और जदीद (आधुनिक) दोनों एक-दूसरे से जुड़े हुए काम हैं। एक चीज़ है जो कुछ लोगों के नज़दीक क़दीम है, वही दूसरों के लिए जदीद (नवीन)। कितनी ही चीज़ें हैं जो एक माहौल में नवीन समझी जाती हैं और दूसरे माहौल में प्राचीन समझी जाती हैं। यह बात भी ध्यान देने के क़ाबिल है कि नया हमेशा नया नहीं रहता बल्कि आज का पुराना कल का नया था और आज जो नया है कल पुराना हो जाएगा।

इन गुज़रते हुए लम्हों में एक मुसलमान को चाहिए कि दिन गुज़रने के बाद वह थोड़ी देर रुककर अपना जाइज़ा ले कि इस गुज़रे हुए दिन में उसने क्या काम किया और क्यों किया? और क्या काम छोड़ा और क्यों छोड़ा? अपने ख़ुद का जाइज़ा लेने का यह अमल रात को सोने से पहले हो तो बेहतर है। अपने-आपका जाइज़ा लेने का यह लम्हा अस्ल में इनसानी इरतिक़ा (उत्थान) के लम्हों में शुमार होता है, जबकि इनसान अपनी अक़्ल को ख़ाहिशों पर और अपने ज़मीर (अन्तरात्मा) को मन पर हाकिम बना देता है, और मोमिन का ईमान हक़ीक़त में एक ऐसी पुलिस है जो उसकी निगरानी करती रहती है। एक ऐसा जाँच करनेवाला है जो हर वक़्त उसका जाइज़ा लेता रहता है। और ऐसा हाकिम है जो हर पल अच्छाई और बुराई का फ़ैसला करता रहता है। और इसी मज़बूत ईमान के ज़रिए से एक मोमिन बुराई पर उकसानेवाले मन की हालत से नेकी पर उकसानेवाले मन की तरफ़ तरक़्क़ी करता है। और नेकी पर उभारनेवाला मन हर गुनाह के काम पर और नेक काम में कोताही पर इनसान को लानत-मलामत करता रहता है।

जैसा कि हदीस में पहले ज़िक्र आ चुका है : "अक़्लमन्द को चाहिए कि वह अपने वक़्त को चार हिस्सों में बाँट ले, इसी में एक वक़्त अपने मन का जाइज़ा लेने के लिए ख़ास करे।"

हज़रत उमर-बिन-ख़त्ताब (रज़ि॰) फ़रमाते थे—

"लोगो! अपना जाइज़ा ले लो, इससे पहले कि तुम्हारा हिसाब लिया जाए, और अपने आमाल को तौलो, इससे पहले कि वे अल्लाह के तराजू में तौले जाएँ।"

हज़रत उमर (रज़ि॰) का तरीक़ा था कि जब रात छा जाती तो अपने क़दमों पर कोड़ा मारकर अपने-आप से पूछते कि तुमने आज क्या अमल (काम) किया?

एक बड़े इज़्ज़तदार ताबिई हज़रत मैमून-बिन-मेहरान (रह॰) कहते हैं—

एक परहेज़गार आदमी अपने मन का हिसाब ज़ालिम बादशाह और लालची साझेदार से ज़्यादा सख़्त तरीक़े से करता है।

हसन बसरी (रह॰) कहते हैं कि मोमिन अपने नफ़्स पर क़व्वाम (हाकिम) है, वह अल्लाह की पकड़ के डर से हमेशा उसका जाइज़ा लेता रहता है, और जो लोग अपना जाइज़ा इसी दुनिया में लेते रहते हैं उनका हिसाब क़ियामत के दिन हलका होगा। और क़ियामत के दिन उन लोगों का हिसाब सख़्त होगा जिन्होंने इस दुनिया में अपना जाइज़ा या हिसाब-किताब नहीं लिया और अपने मन को आज़ाद छोड़े रखा। फिर जाइज़ा लेने की वज़ाहत करते हुए बताया कि मोमिन को एक चीज़ मिलती है और वह उसे भली मालूम होती है, मगर वह कहता है, "ख़ुदा की क़सम तू मुझे भली लगती है और तू मेरी ज़रूरत भी है, लेकिन मेरे और तेरे बीच ख़ुदा का डर आड़ है।"

फिर फ़रमाया कि जब मोमिन से कोई कोताही हो जाती है तो वह अपने आपकी पकड़ करता है और पूछता है कि तूने इससे क्या इरादा किया था? और फिर उस कोताही पर शर्मिन्दा होता है और अल्लाह से पक्का वादा करता है कि इन-शाअल्लाह अब उसको दोबारा नहीं करेगा।

जो आदमी रोज़ाना इस मुहासबे (जाइज़े) का वक़्त न निकाल सके तो वह कुछ दिनों के बाद या कम-से-कम हफ़्ते में एक बार ज़रूर अपना जाइज़ा ले लिया करे ताकि उसे यह मालूम हो कि क्या खोया और क्या पाया?

फिर इसी तरह हर महीने के ख़त्म होने पर जाइज़ा लेने का एक लम्बा वक़्फ़ा होना चाहिए, और इसी तरह जब इनसान एक साल को अलविदा

रह रहा हो और एक नए साल का स्वागत कर रहा हो तो उस वक़्त उसको अपना जाइज़ा लेने के लिए एक लम्बा वक़्त दरकार होता है ताकि वह उसमें अपने गुज़रे हुए दिनों पर फिर एक नज़र डाले और आनेवाले दिनों के सुधार का सामान करे।

पश्चिमी देशों के लोगों ने सालगिरह (वर्षगाँठ) मनाने की एक अजीबो-ग़रीब बिदअत ईजाद की है, और अफ़सोस कि इस मामले में कुछ मुसलमानों ने भी इसकी पैरवी की है। जब उनकी उम्र का एक साल गुज़र जाता है तो शानदार महफ़िल का आयोजन करते हैं और इसमें तरह-तरह के लज़ीज़ और मज़ेदार खाने-पीने की चीज़ें पेश की जाती हैं।

इसी तरह लोगों ने कुछ दूसरी रस्में भी बिना किसी शरई दलील के अपना ली हैं। मिसाल के तौर पर उम्र के किसी हिस्से या कुछ ख़ास सालों के गुज़रने पर मोमबत्तियाँ जलाना और फिर ड्रामाई अन्दाज़ से बुझाना और इस तरह के प्रोग्रामों में मुबारकबादियों और तोहफ़े का लेन-देन करना।

हालाँकि एक अक़्लमन्द इनसान के लिए बेहतर यह था कि वह इस मौक़े को ग़नीमत जानता और अपनी ज़िन्दगी के एक साल गुज़रने पर ग़ौरो-फ़िक्र से काम लेता और एक होशमन्द व्यापारी की तरह जो हर साल आग़ाज़ (आरम्भ) पर अपने रजिस्टरों, मौजूदात और क़र्ज़ों का जाइज़ा लेता है, अपनी उम्र के गुज़रे हुए दिनों का जाइज़ा लेता और यह देखता है उसकी उम्र का कितना हिस्सा उसके हक़ में गुज़रा और कितना उसके ख़िलाफ़? क्या फ़ायदा हुआ और क्या नुक़सान? और फिर इस मौक़े पर अल्लाह से दुआ करता कि "उसका आज उसके गुज़रे हुए वक़्त से बेहतर हो, और उसका मुस्तक़बिल (भविष्य) उसके वर्तमान से बेहतर हो।

इसी तरह अक़्लमन्द इनसान की शान तो यह थी कि वह अपनी उम्र से एक साल निकल जाने पर अपने-आपका जाइज़ा लेता। इसलिए कि अल्लाह तआला उससे इसके बारे में पूछताछ करेगा और यह कोई थोड़ी मुद्दत नहीं है, बल्कि पूरा एक साल (बारह महीने) है, और एक महीना तीस दिन का और एक दिन चौबीस घंटे का, एक घंटा साठ मिनट का और एक

मिनट साठ सेकंड का होता है। ज़िन्दगी का हर सेकंड अल्लाह की नेमत और इनसान के पास उसकी अमानत है।

उस होशमन्द इनसान के लिए मुनासिब बात यह थी कि वह अपने-आप में दुखी होता, इसलिए कि उसकी उम्र का एक साल क्या गुज़रा, मानो उसकी उम्र की एक बुनियाद ढह गई और उसकी ज़िन्दगी की किताब का एक पन्ना पलट गया। इनसान की ज़िन्दगी का हर दिन जो गुज़रता है वह अस्ल में उसके ज़िन्दगी के पेड़ का एक पत्ता होता है जो मुरझाकर गिर जाता है।

मुस्तक़बिल (भविष्य) का तसव्वुर

माज़ी (भूतकाल) की तरह मुस्तक़बिल का तसव्वुर भी ज़रूरी है और इनसान स्वाभाविक तौर पर मुस्तक़बिल से बँधा हुआ है, इसलिए वह किसी हाल में भी न उससे ग़फ़लत बरत सकता है और न उसे पीठ पीछे डाल सकता है। जिस तरह इनसान को याद्दाश्त की ताक़त दी गई है जो उसे माज़ी से जोड़े रखती है, उसी तरह उसे सोचने की ताक़त भी दी गई है जो उसके ज़ेहन में मुस्तक़बिल और उसमें सम्भावित चीज़ों की कल्पना पैदा करती रहती है।

मुस्तक़बिल की एक ख़ासियत यह है कि वह नज़रों से ओझल और अज्ञात है। कोई नहीं जानता कि उसके लिए मुस्तक़बिल के सीने में क्या राज़ और भलाई-बुराई छिपी हुई हैं। जैसा कि अल्लाह ने फ़रमाया है—

"कोई जानदार नहीं जानता कि कल वह क्या कमाई करनेवाला है।" (क़ुरआन, सूरा-31 लुक़मान, आयत-34)

इसकी एक दूसरी ख़ासियत यह है कि जो कुछ उसमें आनेवाला है वह क़रीब है, चाहे आदमी जितना भी गुमान कर ले कि वह दूर है। इसी लिए कहा गया है कि आज के साथ कल लगा हुआ है। क़ुरआन में अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"और क़ियामत के घटित होने में कुछ देर न लगेगी, मगर बस

इतनी कि जिसमें आदमी की पलक झपक जाए, बल्कि उससे भी कुछ कम।" (क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, आयत-77)

इसलिए अक़्लमन्द इनसान वह है जो अभी से आगे के लिए सामान करे और किसी मामले के पेश आने से पहले उसके लिए तैयार हो जाए। अल्लाह तआला ने फ़रमाया–

"ऐ लोगो, जो ईमान लाए हो! अल्लाह से डरो, और हर शख़्स यह देखे कि उसने कल के लिए क्या सामान किया है।"

(क़ुरआन, सूरा-59 हश्र, आयत-18)

जिन लोगों का यह ख़याल है कि दीन इनसान को माज़ी (भूतकाल) से जोड़ता है, उन्होंने दीन के जौहर और उसकी हक़ीक़त को समझने में बड़ी ग़लती की है। इसलिए कि दीन की सबसे बड़ी मुहिम यह है कि वह इनसान को हमेशा की ज़िन्दगी यानी मुस्तक़बिल (Future) के लिए तैयार करे, एक ऐसे घर के लिए जो इस घर (दुनिया) से ज़्यादा बेहतर और हमेशा रहनेवाला है।

हक़ीक़त में मुस्तक़बिल के तसव्वुर को दीन में बुनियादी हैसियत हासिल है। इसी लिए पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने फ़रमाया है–

"एक मोमिन दो अन्देशों (शंकाओं) के बीच है–एक उसकी उम्र का वह हिस्सा जो गुज़र गया क्योंकि वह नहीं जानता कि अल्लाह उसके बारे में उसके साथ क्या मामला करनेवाला है और दूसरा उसकी उम्र का वह हिस्सा जो बाक़ी है क्योंकि उसे नहीं मालूम कि अल्लाह तआला उसके ताल्लुक़ से उसके साथ क्या फ़ैसला करनेवाला है। बन्दे को चाहिए कि अपनी दुनियावी ज़िन्दगी से अपनी आख़िरतवाली (पारलौकिक) ज़िन्दगी के लिए साधन जुटाए और बुढ़ापे से पहले जवानी से ख़ूब फ़ायदा उठा ले। उस ज़ात की क़सम जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है! मौत के बाद अल्लाह को राज़ी करने का कोई मौक़ा नहीं है। और इस दुनिया के बाद जन्नत और जहन्नम के सिवा कोई घर नहीं है।" (हदीस : बैहक़ी)

इसका मतलब यह हरगिज़ नहीं है कि दीनदार इनसान सिर्फ़ अपनी आख़िरत की फ़िक्र में लगा रहता है और दुनिया की आनेवाली ज़िन्दगी की फ़िक्र से ग़ाफ़िल (बेपरवाह) होता है, बल्कि इस्लाम ने मुसलमानों को तालीम दी है कि वे आनेवाले कल के लिए पूरी होशियारी और एहतियात से काम लें, इसके लिए भरपूर तैयारी करें और हर वक़्त चौकन्ना रहें। और उन सभी साधनों को अपनाएँ जो उनके आनेवाले कल के लिए मददगार और मुआविन हों, चाहे उनका ताल्लुक़ दीनी मामलों से हो या दुनियावी मामलों से।

चूँकि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की शख़सियत (व्यक्तित्व) मुसलमानों के लिए एक नमूना है, इसी लिए हम देखते हैं कि जब आप (सल्ल०) ने औस और ख़ज़रज के क़बीलों के साथ बैअत की तो मानो उसके ज़रिए से आप (सल्ल०) अपनी दावत के मुस्तक़बिल के लिए जुस्तुजू कर रहे हैं, और इस्लामी शरीअत और इस्लामी मुआशरे (समाज) के लिए एक मज़बूत ठिकाने की तलाश में आप (सल्ल०) को हिजरत की फ़िक्र भी है। क्या अक़बा की पहली बैअत और अक़बा की दूसरी बैअत और मदीना की तरफ़ आप (सल्ल०) की हिजरत की तैयारी इस्लाम के मुस्तक़बिल के लिए मज़बूत मंसूबाबन्दी और उसपर लगातार अमल करने के अलावा कुछ और थी?

दुनिया के मामले में हम नबी (सल्ल०) को देखते हैं कि अपने घरवालों के लिए एक साल की ख़ुराक जमा करते हैं और उसे अल्लाह पर भरोसा करने के ख़िलाफ़ नहीं समझते। इसलिए कि भरोसा करने का मतलब कल के सामान को जुटाने का इनकार नहीं है।

वर्तमान का बन्दोबस्त

चूँकि मुसलमान के लिए ज़रूरी है कि जो गुज़र गया उससे शिक्षा लेने, फ़ायदा उठाने और अपने-आपका जाइज़ा लेने के लिए कुछ वक़्त निकाले और मुस्तक़बिल (भविष्य) पर नज़र रखे ताकि उसके लिए पहले से साज़ो-सामान तैयार करे और सफ़र का सामान मुहैया करे। इसी तरह आज के लिए भी एक ख़ास तरह के बन्दोबस्त की रहनुमाई ज़रूरी है ताकि हम

उस वक़्त से भरपूर फ़ायदा उठा सकें जिसमें हम आज जी रहे हैं, इससे पहले कि वह अचानक छिन जाए या बरबाद हो जाए।

इमाम अहमद अबू-हामिद ग़ज़ाली (रह॰) 'इहयाउल-उलूम' में कहते हैं—

वक़्त तीन तरह के हैं : एक वह वक़्त जिसके बारे में इनसान को कुछ सोचना नहीं है कि वह कैसे गुज़रा, मेहनत में या ऐश और आराम में। और एक वक़्त आनेवाला है जो अभी तक आया नहीं है, और इनसान नहीं जानता कि उसके आने तक वह ज़िन्दा भी रहेगा या नहीं, और उसे यह भी नहीं मालूम है कि अल्लाह तआला इसमें उसके साथ क्या फ़ैसला करनेवाला है। और तीसरा वक़्त वह है जो सामने मौजूद है, जिसमें इनसान को अपने रब के हुक्मों की पाबन्दी के साथ पूरी जिद्दो-जुहद करनी चाहिए। इस तरह अगर आनेवाला वक़्त न भी मिल सका तो कम-से-कम जो वक़्त मौज़ूद है उसके बरबाद होने पर हसरत तो न करनी पड़ेगी। और अगर आनेवाला वक़्त आ गया तो उसका हक़ भी वह उसी तरह अदा करेगा जिस तरह पहले वक़्त का किया था। इनसान अपनी तमन्नाओं को पचास साल तक दराज़ (लम्बा) न करे, बल्कि जो वक़्त उसे मिला हुआ है उससे, जैसा उस वक़्त का हक़ है, फ़ायदा उठाने का संकल्प करे, इस तरह उस वक़्त का इस्तेमाल करे कि वह उसकी ज़िन्दगी का आख़िरी लम्हा है—हालाँकि उसको इसका इल्म नहीं है और अगर उसके लिए यह जानना मुमकिन हो कि जो वक़्त मिला हुआ है ये उसके आख़िरी पल हैं तो उसे चाहिए कि अपने आपको इस तरह रखे कि अगर उसे मौत आ ले तो वह उसको नापसन्द न करे।

और उसके हालात नबी (सल्ल॰) के उस कथन की गवाही दे रहे हों, जिसे हज़रत अबू-ज़र (रज़ि॰) ने बयान किया है—

> "मोमिन सिर्फ़ तीन चीज़ों का आरज़ूमन्द होता है : आख़िरत के सामान की फ़राहमी, रोज़गार के लिए दौड़-धूप या हलाल चीज़ों से लुत्फ़अन्दोज़ी।" (हदीस : इब्ने-हिब्बान)

और अबू-ज़र (रज़ि॰) ही से इसी मफ़हूम (भाव) की एक और रिवायत भी है—

"अक़्लमन्द को चाहिए कि अपने वक़्त के चार हिस्से करे : एक वह वक़्त जिसमें अपने रब की इबादत और दुआ में मशग़ूल हो। दूसरा वह वक़्त जिसमें वह अत्यन्त बारीकी से अपना जाइज़ा ले। तीसरा वह वक़्त जिसमें वह अल्लाह की सृष्टि यानी अल्लाह की बनाई हुई चीज़ों पर ग़ौरो-फ़िक्र करे। और चौथा वक़्त खाने-पीने के लिए फ़ारिग़ करे। इसलिए कि यह चीज़ उसके लिए बाक़ी वक़्तों से फ़ायदा उठाने में मददगार साबित होगी। फिर इनसान को चाहिए कि जिस वक़्त वह खाने-पीने में व्यस्त होता है उस वक़्त को भी बेहतर अमल यानी ज़िक्र और फ़िक्र से ख़ाली न रखे। इसलिए कि जो खाना वह खाता है वह भी अल्लाह की क़ुदरत और कारीगरी का अजीबो-ग़रीब नमूना है। अगर वह इसमें ग़ौरो-फ़िक्र करे तो यह जिस्मानी आमाल से कई दर्जा बेहतर होगा।"

(हदीस : इब्ने-हिब्बान)

वर्तमान समय के हक़ को अदा करते हुए ज़िन्दगी के लिए अमल पर उभारने में सबसे ज़्यादा शानदार यह हदीस है जो इससे पहले गुज़र चुकी है जिसमें आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जब क़ियामत आ जाए और उस वक़्त तुममें से किसी के हाथ में खजूर का छोटा पौधा हो, और उसे वह अपनी जगह से उठने से पहले ज़मीन में लगा सकता है, तो लगा दे।" (हदीस : बुख़ारी)

अगर हम थोड़ी देर रुककर इस हदीस का तजज़िया (विश्लेषण) करें तो यहाँ यह सवाल उभरता है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने उस शख़्स को जिसके हाथ में पौधा है यह हुक्म क्यों दिया कि वह उसे लगा सकता हो तो लगा दे?

हालाँकि वह उस पौधे का फल चुनने के लिए हरगिज़ ज़िन्दा नहीं रहेगा। इसलिए उसके पेशे-नज़र यह है ही नहीं कि आज जो पौधा वह लगा रहा है कल उसका फल तोड़ेगा। वह इस पौधे को इसलिए भी नहीं लगा रहा है कि उसके बाद आनेवाले उसका फल खाएँगे। उस बूढ़े शख़्स की तरह जो

ज़ैतून का पेड़ लगा रहा था, जब उससे यह पूछा गया कि तुम यह पेड़ क्यों लगा रहे हो, अब तो तुम क़ब्र के मुँह पर खड़े हो? उसने जवाब दिया कि हमारे बुज़ुर्गों ने हमारे लिए पेड़ लगाया तो हमने फल खाया, और अब हम पेड़ लगा रहे हैं ताकि हमारे बाद के लोग फल खाएँ।

यहाँ यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि इस हदीस में अमल और अमल करनेवाले की फ़ज़ीलत (बड़ाई) बयान की गई है, चाहे कोई इस अमल के फल से फ़ायदा उठाए या न उठाए। इसके ज़रिए से यह बात मुसलमान के दिमाग़ में बिठाई गई है कि जब तक ज़िन्दगी बाक़ी है वह ज़मीन की आबादकारी का अमल न छोड़े, और उसके लिए जाइज़ नहीं कि एक पल के लिए भी बिना अमल के ज़िन्दा रहे चाहे इसराफ़ील (अलैहि॰) सूर सम्भाले खड़े हों, और उनके सूर फूँकते ही ज़िन्दगी का सारा निज़ाम दरहम-बरहम हो जाने का यक़ीन हो।

ऐसे ग़ैर-यक़ीनी लम्हे में अमल या पौधा लगाने की ताकीद अस्ल में मौजूदा (वर्तमान) वक़्त के हक़ को अदा करने की अहमियत की तरफ़ इशारा करती है और गुज़रे हुए और आनेवाले वक़्त को अलग करके ज़िन्दगी के हक़ीक़ी लम्हों से फ़ायदा उठाने पर ज़ोर देती है।

इनसान की लम्बी उम्र का रहस्य

इसमें शक नहीं कि इनसान फ़ितरी तौर पर ज़िन्दगी से प्यार करता है और चाहता है कि उसकी उम्र लम्बी हो, बल्कि उसका बस चले तो हमेशा ज़िन्दा रहे। इनसान की इसी हमेशा रहने की ख़ाहिश की वजह से ही इबलीस ने आदम (अलैहि०) को बहकाया और उन्होंने उस पेड़ का फल खा लिया जिससे उन्हें मना किया गया था—

"शैतान ने उसे (आदम) को फुसलाया, कहने लगा : आदम, बताऊँ तुम्हें वह पेड़ जिससे हमेशा की ज़िन्दगी और न ख़त्म होनेवाली सल्तनत हासिल होती है?" (क़ुरआन, सूरा-20 ता॰ हा॰, आयत-120)

ख़ुद इस्लाम की नज़र में लम्बी उम्र एक नेमत है, शर्त यह है कि यह उम्र हक़ की मदद करने और भलाई के कामों में इस्तेमाल हो। नबी (सल्ल॰) से पूछा गया कि कौन-से लोग अच्छे हैं? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जिसकी उम्र लम्बी हुई और अमल अच्छा हुआ।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

लेकिन इसमें भी शक नहीं कि मौत ने लोगों की ज़िन्दगी बद-मज़ा कर दी है। कभी-कभी वह नौजवानों को जवानी के आग़ाज़ (आरम्भ) ही में और नए शादीशुदा जोड़े को उसकी शादी के शुरुआती दिनों में ही उचक लेती है और इकलौते लड़के को जो ख़ानदान की निशानी होता है, उसके ख़ानदानवालों के हाथों से छीन लेती है, मालदार और ख़ुशहाल आदमी को उसकी नेमत और ख़ुशहाली की आग़ोश से झपट लेती है। और बड़े-से-बड़े रौब और दबदबेवाले हाकिम को उसके ख़ादिम और ख़िदमतगारों के बीच से उठा लेती है। इसी लिए मौत का दूसरा नाम 'हाज़िमुल-लज़्ज़ात, व मुफ़र्रिक़ुल-जमाआत' रखा गया है। यानी लज़्ज़तों का ख़ातिमा करनेवाली और जमाअतों को मुंतशिर कर (बिखेर) देनेवाली।

चूँकि मौत इनसानी ज़िन्दगी का अंजाम है, इसलिए इसकी उम्र बहुत थोड़ी है, चाहे उसकी तमन्नाएँ कितनी ही लम्बी हों और उसे कितनी ही

लम्बी मुद्दत जीने को मिल जाए, मगर वे गिने-चुने दिन हैं और महदूद साँसें हैं जिसके सिलसिले को मौत बिना इजाज़त के काट देती है और इनसान को गुज़रे हुए ज़माने का क़िस्सा बना देती है।

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

"तुम जितना चाहो ज़िन्दा रहो, मौत तुम्हें आकर रहेगी, तुम जिससे चाहो मुहब्बत करो मगर एक दिन तुम्हें उससे जुदा होना है। और जो चाहो अमल करो, बेशक तुम्हें उसका बदला पाना है और उसकी जवाबदेही करनी है।" (हदीस : तबरानी)

अब सवाल यह पैदा होता है कि जब इनसान की उम्र इतनी महदूद (सीमित) है तो वह कैसे अपनी उम्र लम्बी या बड़ी करेगा, और यह कैसे मुमकिन है?

इस बात का जवाब यह है कि हक़ीक़त में इनसान की हक़ीक़ी उम्र वे महीने और साल नहीं हैं जिन्हें वह पैदाइश की पहली घड़ी से मौत की आख़िरी साँस तक गुज़ारता है। बल्कि उसकी वास्तविक उम्र तो उन भलाई के कामों और नेक अमल के बराबर है जो उसके आमाल-नामे (कर्म-पत्र) में अल्लाह के यहाँ लिखे जाते हैं।

इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं है कि तुम एक आदमी को देखते हो कि उसकी उम्र सौ साल से ज़्यादा है, मगर उसके खाते में अल्लाह का डर और उसके बन्दों को फ़ायदा पहुँचाने के काम की पूँजी ज़ीरो (शून्य) के बराबर है।

एक दूसरा इनसान है जो जवानी ही में मर जाता है, मगर कम मुद्दत (अवधि) में ही उसका आमाल-नामा बड़े-बड़े कारनामों से भरा हुआ होता है। एक हकीम का क़ौल (कथन) है—

"कितनी ही उम्रें हैं जिनकी मुद्दत बहुत लम्बी होती है, मगर सामान कम होता है और कितनी ही उम्रें महीने-साल के एतिबार से कम होती हैं, लेकिन सामान के एतिबार से ज़्यादा होती हैं। तो जिसकी उम्र में बरकत दी गई वह थोड़े वक़्त में अल्लाह तआला

के इतने इनाम पा लेता है जो न लफ़्ज़ों में बयान किए जा सकते हैं, न इशारों में।"

इसलिए आदमी अल्लाह की फ़रमाँबरदारी और बन्दगी और अल्लाह वे बन्दों के साथ भलाई करके अपनी उम्र लम्बी कर सकता है। जितना ह उसके अमल (काम) में इख़लास और जमाव होगा उतना ही उसका बदल और फ़ज़्ल अल्लाह के नज़दीक ज़्यादा होगा। और उसके अमल का जितन फ़ायदा और असर दूसरों की ज़िन्दगियों पर होगा उतना ही उसर्क क़द्रो-क़ीमत होगी। मसलन, उसने लोगों को हिदायत का रास्ता दिखाया य उनको तबाही से बचाया, या उनसे कोई मुसीबत दूर की, या उनके किस दुश्मन को दूर किया, या वे काम जिनका फ़ायदा लोगों, जमाअतों बल्कि पू समुदाय (मिल्लत) को पहुँचता है।

यही वजह है कि अल्लाह की तरफ़ बुलाना और अल्लाह की राह में जिहाद और संघर्ष करना अपने मक़ाम और मर्तबे के लिहाज़ से अल्लाह वे नज़दीक चोटी के यानी बहुत बड़े कामों में गिने जाते हैं। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) फ़रमाते हैं—

"जिसने हिदायत (मार्ग-दर्शन) की तरफ़ दावत दी तो उसके लिए उन तमाम लोगों के बराबर सवाब होगा जो उस हिदायत की पैरवी करेंगे, बग़ैर इसके कि उनके सवाबों में कोई कमी की जाए।"

(हदीस : मुस्लिम)

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"बेशक, अल्लाह तआला ने जन्नत में अल्लाह की राह में जिहाद करनेवालों के लिए सौ दरजे तैयार कर रखे हैं। और दो दरजों के बीच का फ़ैसला ज़मीन और आसमान के बराबर है।"

(हदीस : बुख़ारी)

इसी तरह इनसाफ़-पसन्द इमाम और हाकिमों का दरजा भी बढ़ा हुअ है क्योंकि उनके न्याय और इनसाफ़-पसन्दी से बेशुमार लोगों को फ़ायद पहुँचता है, बल्कि क़ौमें और उम्मतें उनके अद्ल व इनसाफ़ से ख़ुशहाल

होती हैं और दूसरी वजह यह है कि इनसाफ़ के तक़ाज़े पूरे करने के लिए उन्हें अपने-आपके साथ बड़ा जिहाद (जिद्दो-जुहद), शहवानी जज़्बात, गुनाहों की तरफ़ दावत देनेवालों और ज़ुल्म के ख़िलाफ़ ज़बरदस्त मुक़ाबला करना पड़ता है। इसी वजह से हदीस में आया है—

"आदिल (इनसाफ़-पसन्द) हाकिम का एक दिन साठ साल की इबादत से बेहतर है।" (हदीस : तबरानी)

एक बार का वाक़िआ है कि रसूल (सल्ल॰) के एक सहाबी जंग से वापस होते हुए एक वादी (घाटी) से गुज़रे जिसमें मीठे पानी का एक छोटा-सा चशमा था। सहाबी के दिल में ख़याल आया कि काश मैं लोगों से अलग-थलग होकर इस घाटी में इबादत के लिए रुक जाता! मगर उन्होंने अपने दिल में सोचा कि जब तक अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से इजाज़त नहीं ले लूँगा, हरगिज़ ऐसा नहीं करूँगा। चुनाँचे जब उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से इजाज़त चाही तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"ऐसा न करो, इसलिए कि तुम्हारा अल्लाह की राह में खड़ा होना, घर में तुम्हारी सत्तर साल की इबादतों से बेहतर है। क्या तुम पसन्द नहीं करते कि तुम्हें अल्लाह बख़्श दे और जन्नत में दाख़िल फ़रमाए। अल्लाह के रास्ते में जंग करो। जिसने अल्लाह के रास्ते में थोड़ी देर के लिए भी जंग की, जन्नत उसके लिए वाजिब हो गई।" (हदीस : तिरमिज़ी, हाकिम)

इस तरह आमाल (कर्म) एक-दूसरे से फ़ज़ीलत (बड़ाई) में बढ़ जाते हैं और अपने असर और नतीजे के एतिबार से भी मुख़्तलिफ़ (भिन्न) होते हैं। वह आदमी बहुत ही ख़ुशक़िस्मत है जो अच्छे आमाल करने का ख़ाहिशमन्द या लोभी हो। जैसा कि अल्लाह का फ़रमान है—

"(ऐ नबी!) बशारत दे दो मेरे उन बन्दों को जो बात को ग़ौर से सुनते हैं और उसके बेहतरीन पहलू की पैरवी करते हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-39 ज़ुमर, आयतें-17,18)

कितने लोग हैं जिन्होंने कम वक़्त में बड़े-बड़े काम किए हैं, यहाँ तक

कि उनके कामों को करामात समझा गया। हालाँकि वह करामात (चमत्कार नहीं बल्कि अल्लाह की बरकत और तौफ़ीक़ थी।

इस बात का खुला हुआ सुबूत हमें अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की ज़िन्दगी में मिलता है कि आप (सल्ल॰) 23 साल की छोटी-सी मुद्दत में लोगों को जिहालत से निकालकर नूरे-हक़ (सत्य-मार्ग) की तरफ़ ले आए और आप (सल्ल॰) ने ऐसा इंक़िलाब बरपा किया कि पूरी इनसानी तारीख़ का रुख़ बदलकर रख दिया। इसी छोटी-सी मुद्दत (अवधि) में आप (सल्ल॰) ने दीन को क़ायम किया, इसी की बुनियाद पर एक बेमिसाल नस्ल की तरबियत की। और एक मिसाली उम्मत तैयार करके आलमी हुकूमत की बुनियाद रख दी। हालाँकि इस्लामी दावत के शुरू के दिनों से ही आप (सल्ल॰) के रास्ते में तरह-तरह की परेशानियाँ और रुकावटें आती रहीं।

यह कहना दुरुस्त न होगा कि नबी (सल्ल॰) को इतनी सारी कामयाबियां सिर्फ़ मोजिज़ाते-इलाही (ईश्वरीय चमत्कार) की बदौलत मिलीं। आप (सल्ल॰ के बराबर कौन होगा! हमारा और नबी (सल्ल॰) का क्या मुक़ाबला!!

सच बात यह है कि रसूल (सल्ल॰) की ज़िन्दगी दावत और जिहाद के मैदान में अल्लाह तआला की आम सुन्नत के मुताबिक़ गुज़रती रही है। आप (सल्ल॰) का वह मोजिज़ा (चमत्कार) जिसके ज़रिए से मुशरिकों को चैलेंज किया गया वह अस्ल में क़ुरआन था न कि वे आचरण जो दूसरों के लिए चामत्कारिक हों। और दूसरे मोजिज़े और करामातें भी किसी ख़ास सूरते-हाल में उस वक़्त ज़ाहिर हुई जबकि ज़मीन के हर मुमकिन साधन काम में लाए जा चुके हों और सिवाय आसमानी मदद के और कोई सूरत बाक़ी न रही हो। जैसा कि हिजरत के मौक़े पर अल्लाह ने आप (सल्ल॰) पर अपनी सकीनत (मेहरबानी, आफ़ियत) नाज़िल करके और ग़ैर-मरई (नज़र न आनेवाली) फ़ौज के ज़रिए से आप (सल्ल॰) की मदद की। इसी तरह बद्र की जंग में हर तरह के दुनियावी असबाब (साधन) अपना लेने के बाद अल्लाह ने एक हज़ार फ़रिश्तों से आप (सल्ल॰) की मदद की—

"यह बात तुम्हें अल्लाह ने सिर्फ़ इसलिए बता दी कि तुम्हें

खुशख़बरी हो और तुम्हारे दिल इससे मुत्मइन हो जाएँ।"

(क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-10)

खुलफ़ा-ए-राशिदीन (रज़ि॰) और उनके साथी सहाबा किराम (रज़ि॰) और ताबिईन को देखो कि उन्होंने चन्द दिनों के अन्दर किस तरह से दुनिया के एक बहुत बड़े और विस्तृत हिस्से को जीत लिया। इस्लाम के प्रचार-प्रसार के ज़रिए से पूरी दुनिया की क़ौम को इस्लामी तालीमात से इस तरह परिचित कराया कि उनके जाहिली तौर-तरीक़े, आदात और लबो-लेहजे को बिलकुल बदलकर रख दिया। इस्लाम ने एक सदी से कम मुद्दत में दुनिया के अन्दर जो दीनी, नफ़सियाती, फ़िक्री, इजतिमाई और सियासी इन्क़िलाब बरपा किया उसे देखकर इतिहासकार हैरान और आश्चर्यचकित हैं।

हज़रत उमर-बिन-अब्दुल-अज़ीज़ (रह॰) को देखो कि जब उन्होंने ख़िलाफ़ते-राशिदा को दोबारा वापस लाने का पक्का इरादा कर लिया और तय कर लिया कि लोगों के हुक़ूक़ उन्हें लौटाए जाएँ, मज़लूमों की फ़रियाद सुनी जाए और अमानतें उनके मालिकों को वापस की जाएँ तो अल्लाह के मामले में उन्हें किसी मलामत करनेवाले का ख़ौफ़ नहीं हुआ और उनकी ख़िलाफ़त के ढाई साल भी नहीं गुज़रे कि उन्होंने ज़मीन को न्याय और इनसाफ़ से भर दिया।

जब नेक अमल के रास्ते में दुशवारियाँ और रुकावटें ज़्यादा होती हैं और मदद करनेवालों की कमी होती है तो उसका वज़न भी अल्लाह के तराज़ू में ज़्यादा होता है और उसकी क़द्रो-क़ीमत और उसका बदला और सवाब अल्लाह के नज़दीक उसी क़द्र बढ़ जाता है।

इसी लिए सहाबा किराम (रज़ि॰) की फ़ज़ीलत उनके बाद के लोगों पर ज़्यादा है, क्योंकि वे लोग उस वक़्त ईमान लाए जबकि लोग हक़ का इनकार कर रहे थे। उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की उस वक़्त तसदीक़ की जब लोग झुठला रहे थे। इसी तरह मुहाजिरीन और अनसार में जो पहले ईमान लानेवाले सहाबा हैं उनका दरजा उनके बाद के लोगों पर बढ़ा हुआ है जो मक्का में फ़त्ह और इस्लाम के ग़लबे और इक़्तिदार के बाद ईमान लाए।

इसी बात को साफ़ तौर पर क़ुरआन यूँ कहता है—

"तुममें से जो लोग फ़त्ह (मक्का की फ़त्ह) के बाद ख़र्च और जिहाद करेंगे वे कभी उन लोगों के बराबर नहीं हो सकते जिन्होंने फ़त्ह (मक्का की फ़त्ह) के पहले ख़र्च और जिहाद किया है। उनका दरजा बाद में जिहाद और ख़र्च करनेवालों से बढ़कर है, अगरचे अल्लाह ने दोनों ही से अच्छे वादे किए हैं। जो कुछ तुम करते हो अल्लाह को उसकी ख़बर है।"

(क़ुरआन, सूरा-57 हदीद, आयत-10)

इसी तरह जब हालात नासाज़गार हों और समाज में हर तरफ़ बिगाड़ आ गया हो, उस वक़्त भी नेकी के काम करने का अज्र और सवाब बढ़ जाता है और उसकी क़द्रो-क़ीमत में बढ़ोत्तरी हो जाती है जबकि शासकवर्ग या हाकिम ज़ुल्म कर रहे हों और दौलतमन्द अय्याशियाँ कर रहे हों, ताक़तवर कमज़ोर को सता रहे हों, उलमा निष्क्रियता दिखा रहे हों, बुराई आम हो रही हो, हराम कामों का बोल-बाला हो रहा हो और भलाई सर छुपाती फिर रही हो। यही वह परिस्थिति है जिसकी ताबीर क़दीम (प्राचीन) उलमा 'ज़ुहूरुल-फ़ितन और फ़सादुज़्ज़मान' के लफ़्ज़ों से करते हैं और हम इसकी ताबीर 'जदीद जाहिलियत' के लफ़्ज़ से करते हैं। लिहाज़ा इस सूरते-हाल में दीन का काम करनेवाले और दीन के लिए काम करनेवाले ऐसे हैं मानो वे दीन की पस्ती और जाहिलियत के उरूज (उत्थान) के इस दौर में नए सहाबा हैं।

हदीस में है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"हर्ज (फ़ितने के दौर) में इबादत मेरी तरफ़ हिजरत की तरह है।"

(हदीस : मुस्लिम, तिरमिज़ी, इब्ने-माजा)

हाफ़िज़ मुंज़िरी (रह॰) फ़रमाते हैं कि हर्ज से मुराद इख़्तिलाफ़ों और फ़ितने का दौर है। कुछ दूसरी हदीसों में इसकी तशरीह (व्याख्या) 'क़त्ल' से की गई है। इसलिए कि फ़ितने और इख़्तिलाफ़ात इसके असबाब में से हैं और यहाँ मुसब्बब (कारक) को सबब (कारण) की जगह रख दिया गया है।

अबू-उमैया शुअबानी (रह॰) कहते हैं कि मैं अबू-सअलबा अल-ख़ुशनी

रज़ि॰) के पास आया और उनसे मालूम किया कि आप लोग इस आयत के
ारे में क्या कहते हैं। उन्होंने पूछा : कौन-सी आयत? मैंने कहा—

"ऐ लोगो, जो ईमान लाए हो! अपनी फ़िक्र करो। किसी दूसरे की गुमराही से तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ता, अगर तुम ख़ुद सीधे रास्ते पर हो।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-105)

उन्होंने कहा कि इस आयत के बारे में तुमने बाख़बर हस्ती से मालूम क़िया है, मैंने नबी (सल्ल॰) से इस आयत के बारे में मालूम किया तो आप सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"तुम लोगों को भलाई की तरफ़ बुलाते और बुराई से रोकते रहो, यहाँ तक कि जब तुम देखो कि लोग बुख़्ल की पैरवी कर रहे हैं, नफ़सानी ख़ाहिशों के ग़ुलाम बन गए हैं, दुनिया को आख़िरत पर तरजीह देने लगे हैं, हर अक़्ल और राय रखनेवाला शख़्स अपनी ही अक़्ल और राय पर गर्व करता हो (यानी किताब और सुन्नत को छोड़कर अपनी ही अक़्ल और राय या अपने ही मसलक को अच्छा और पसन्दीदा समझने लगा हो) और जब तुम शरीअत के ख़िलाफ़ ऐसे काम करते हुए देखो जिनके रोकने की तुम्हारे अन्दर ताक़त व क़ुव्वत न हो तो ऐसी हालत में तुम ख़ास तौर पर अपने नफ़्स की फ़िक्र करो। यक़ीनन तुम्हारे बाद सब्र के दिन हैं और उन दिनों में सब्र करना (अपने दीन, किताब और सुन्नत पर जमे रहना) अंगारे को हाथ में लेने की तरह होगा। और जो कोई उन दिनों में नेक अमल करेगा उसको पचास वैसे ही अमल करनेवालों का सवाब मिलेगा।" (हदीस : इब्ने-माजा)

कुछ रिवायतों में अज्र (बदले) के इतने बढ़ जाने की वजह भी लिखी ुई है कि आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"तुम लोग भलाई के कामों के लिए बहुत-से मुआविन और मददगार पाते हो, और उन्हें भलाई के कामों के लिए कोई मददगार नहीं मिलेगा।"

इसका मतलब यह है कि इस हदीस में इस्लाम के बिखराव के बाद कु
सहाबा (रज़ि॰) से ख़िताब किया गया है, जबकि लोग जौक़-दर-जौक़ इस्ला
में दाख़िल हो रहे थे और भलाई के कामों में मदद करनेवालों की कोई कम
नहीं थी। वरना वे मुहाजिरीन और अनसार सहाबा जो दावते-इस्लामी
शुरू के दौर में ईमान लाए, उनके बराबर अज्रो-सवाब और बड़ाई व इज़्ज़
में कोई नहीं हो सकता, क्योंकि उन्हें इस्लाम पर अमल करने के लि
मददगार तो दूर, इस्लाम के ख़िलाफ़ जंग करनेवाले ही मिले और अरबवाल
ने एक साथ होकर उनपर तीर बरसाए।

इस हदीस से साफ़ ज़ाहिर होता है कि लोगों को भलाई की तरफ़ बुला
और बुराई से रोकने का अमल बराबर जारी रहना चाहिए, जब तक
सुननेवाले कान और सोचने और समझनेवाले दिल मौजूद हों। उस वक़्त तक
यह काम जारी रहे जब तक कि हक़ की क़बूलियत की किसी भी सूरत
बहुत थोड़ी भी उम्मीद पाई जाती हो। हाँ, जब हक़ को क़बूल करने के ह
दरवाज़े बन्द हो जाएँ और सारे ज़राए ख़त्म हो जाएँ और सूरते-हाल इतनी
संगीन हो जाए कि उसका मुक़ाबला करना इनसान की ताक़त और उसकी
बरदाश्त से बाहर हो तो ऐसी सूरत में मुसलमान के लिए सब्र के सिवा को
चारा नहीं है।

सब्र का मतलब

यहाँ सब्र का मतलब यह नहीं है कि मुसलमान जी हारकर बैठ जाए
बल्कि सब्र यह है कि वह अल्लाह के फ़ैसले का इस तरह इन्तिज़ार करे कि
उसका सीना बातिल (झूठ) के ख़िलाफ़ उबाल खा रहा हो, जिस तरह हांडी
आग पर उबाल खाती है। ऊपर की हदीस में इसी सब्र को हाथों में अंगार
पकड़ने की तरह कहा गया है।

यहाँ सब्र से मुराद यह भी हो सकता है कि मुसलमान बिगड़े हुए हालात
को जड़ से बदल देने के लिए अनथक कोशिश करे और गहरी नज़र से काम
लेकर ऐसा मंसूबा बनाए जिसके असर दूरगामी हों। इस काम में सच्चे
ईमानवाले एक-दूसरे की मदद करते रहें। इसलिए कि कभी ऐसा होता है कि

जो काम एक आदमी नहीं कर पाता उसे जमाअत कर डालती है। क्योंकि आदमी अकेला अपने-आप में कम हैसियत का होता है, मगर भाइयों के साथ उसकी हैसियत बढ़ जाती है, और फिर यह कि जमाअत के साथ अल्लाह की भी मदद होती है। शायद इससे वही अमल मुराद हो जिसपर आदमी को उस जैसे पचास आदमियों का अज्र (बदला) मिलेगा, बल्कि पचास सहाबा के बराबर अज्र मिलेगा क्योंकि हक़ीक़त के एतिबार से यह अमल सहाबा किराम के अमल के जैसा है। जिस तरह उन्होंने हक़ पर जम जाने, इस्लाम की इशाअत (प्रचार-प्रसार) पर मुत्तहिद (संगठित) होने और जाहिलियत के मुक़ाबले में डट जाने का मुज़ाहरा किया और उस रास्ते में जानो-माल तक की क़ुरबानी देने में कोई झिझक न दिखाई और इसपर पूरी मज़बूती से जमे रहे, यहाँ तक कि अल्लाह ने इसे ग़ालिब कर दिया इसके बावजूद कि इस्लाम-दुश्मन इसको पसन्द नहीं करते थे।

इनसान की दूसरी उम्र

जिस इनसान को भलाई के कामों में अपना वक़्त लगाने की तौफ़ीक़ मिली है वह अपनी उम्र को बढ़ा सकता है, और वह अपनी मौत के बाद भी जितना अल्लाह चाहे अपनी ज़िन्दगी को बढ़ा सकता है। इस तरह वह मुर्दा होते हुए भी ज़िन्दा रहेगा और क़ब्र में होते हुए भी अपना पैग़ाम ज़िन्दों तक पहुँचाता रहेगा।

ऐसा उस वक़्त होगा जब इनसान अपने पीछे कोई फ़ायदा पहुँचानेवाला इल्म छोड़ जाए जिससे लोग उसके बाद फ़ायदा उठाते रहें, या कोई नेक काम या कुछ ऐसे चिह्न या तरीक़े जिनकी लोग पैरवी करें, या कोई जनकल्याणकारी इदारा या संस्था स्थापित कर जाए जो उसके बाद भी लोगों को अपना फ़ायदा पहुँचाता रहे, या नेक औलाद जिनकी उसने अच्छी तरबियत की हो। इन्हीं चीज़ों से इनसान की ज़िन्दगी लम्बी होती है और उसकी सीरत (आचरण) में बुलन्दी आती है।

इस सिलसिले में अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से एक हदीस रिवायत की गई है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जब कोई मर जाता है तो उसका अमल करने का क्रम टूट जाता है, सिवाय तीन चीज़ों के—सदक़ा-ए-जारिया, नफ़ाबख़्श इल्म या नेक औलाद जो उसके लिए दुआ करे।" (हदीस : मुस्लिम)

एक और हदीस में इन तीनों की तफ़सील आई है—

"वे आमाल और नेकियाँ या भलाइयाँ जिनका बदला मोमिन को उसकी मौत के बाद मिलता रहता है ये ये हैं—कोई (नफ़ा देनेवाला) इल्म जो उसने सिखाया हो, विरासत में मुस्हफ़ (क़ुरआन) छोड़ा हो, मस्जिद और मुसाफ़िर-ख़ाने की तामीर कराई हो, नहर जारी कराई हो या अपने माल में से अपनी सेहत और ज़िन्दगी का सदक़ा निकाला हो। इन कामों का बदला उसे मौत के बाद भी मिलता रहेगा।" (हदीस : इब्ने-माजा, बैहक़ी)

इमाम मुस्लिम ने रिवायत की है—

"जिसने कोई अच्छी सुन्नत (तरीक़ा) क़ायम की तो उसको उसका अज्र (बदला) तो मिलेगा ही और उसके साथ उन लोगों का भी अज्र मिलेगा जो उसपर क़ियामत तक अमल करते रहेंगे।"

क़ुरआन में अल्लाह ने फ़रमाया है—

"हम यक़ीनन एक दिन मुर्दों को ज़िन्दा करनेवाले हैं। जो कुछ कर्म उन्होंने किए हैं वे सब हम लिखते जा रहे हैं, और जो कुछ आसार उन्होंने पीछे छोड़े हैं वे भी हम अंकित कर रहे हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-36 या-सीन, आयत-12)

"उस दिन इनसान को उसका सब अगला-पिछला किया-कराया बता दिया जाएगा।" (क़ुरआन, सूरा-75 क़ियामह, आयत-13)

लोगों का इस बात पर इत्तिफ़ाक़ है कि इनसान जो अच्छी यादें अपनी मौत के बाद छोड़कर मरता है वह उसकी दूसरी उम्र है और यह इनसान की महदूद (सीमित) उम्र के बाद एक ग़ैर-महदूद (असीमित) उम्र होती है। और इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, इसलिए कि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰)

ो दुआ में उसका ज़िक्र मौजूद है—

"बाद के आनेवालों में मुझको सच्ची नामवरी अताकर।"

(क़ुरआन, सूरा-26 शुअरा, आयत-84)

इसी लिए हम देखते हैं कि दो आदमी मरते हैं और उनकी मौत के बाद ोगों का सुलूक उनके साथ एकदम अलग होता है। एक शख़्स इस हाल i मरता है कि दिल उसके ग़म में फटे पड़ते हैं, आँखें आँसुओं से तर होती ; और ज़बानों से उसके लिए ज़िक्र और रहमत की दुआ निकलती है। और ूसरे शख़्स का मामला बिलकुल इसके उलट होता है। जब वह मरता है तो उसपर न कोई आँख रोती है और न कोई दिल ग़मगीन होता है, क्योंकि उसने अपनी ज़िन्दगी में मनफ़ी (नकारात्मक) अमल का तरीक़ा इख़्तियार केया और जब तक ज़िन्दा रहा ज़ुल्म और अत्याचार का बाज़ार गर्म करता रहा। ऐसे ही शख़्स के बारे में एक शायर ने कहा है—

فَذَاكَ الَّذِيْ إِنْ عَاشَ لَمْ يَنْتَفِعْ بِهٖ
وَإِنْ مَّاتَ لَمْ تَحْزَنْ عَلَيْهِ أَقَارِبُهٗ

फ़ज़ाकल्लज़ी इन आ-श लम यन-तफ़िअ बिही
व इम मा-त लम तह-ज़न अलैहि अक़ारिबुहू

"यही वह शख़्स है जिसकी ज़िन्दगी से किसी को फ़ायदा नहीं पहुँचा और जब मर गया तो उसके रिश्तेदारों की आँखें भी नहीं पसीजीं।"

और ऐसे ही लोगों के बारे में अल्लाह तआला ने फ़रमाया है—

"कितने ही बाग़ और चश्मे (स्रोत) और खेत और शानदार महल थे जो वे छोड़ गए। कितने ही ऐश के सरो-सामान, जिनमें वे मज़े कर रहे थे, उनके पीछे धरे रह गए। यह हुआ उनका अंजाम, और हमने दूसरों को उन चीज़ों का वारिस बना दिया। फिर न आसमान उनपर रोया न ज़मीन, और ज़रा-सी मुहलत भी उनको न दी गई।"

(क़ुरआन, सूरा-44 दुख़ान, आयतें-25-29)

कभी-कभी ये ज़ालिम लोग मर तो जाते हैं, मगर उनके ज़ुल्म और गुनाह या उनके कुफ़्र और गुमराही नहीं मरती, बल्कि वे अपने शागिर्द और पैरवी करनेवाले विरासत में छोड़ जाते हैं जो तीर की तरह उनके नक़्शे-क़दम (पदचिह्नों) की पैरवी करते हैं।

जब यह बात तस्लीमशुदा है कि जिसने अच्छा तरीक़ा क़ायम और जारी किया तो उसको उसका इनाम मिलेगा और जो लोग क़ियामत तक उसपर अमल करेंगे उनका इनाम भी उसे मिलेगा। ठीक इसी तरह जिसने कोई बुरा तरीक़ा जारी किया होगा उसका गुनाह उसके ज़िम्मे होगा और जो लोग उसपर क़ियामत तक अमल करेंगे उनका गुनाह भी उसके ज़िम्मे होगा।

जिस तरह किसी शख़्स ने नफ़ाबख़्श इल्म छोड़ा तो उसके नेक अमल का सिलसिला ख़त्म नहीं होगा। उसी तरह अगर किसी शख़्स ने बुरे चिह्न, गुमराह करनेवाली फ़िक्र छोड़ीं तो उनकी बद-आमालियों का सिलसिला भी बराबर जारी रहेगा।

कितने बदक़िस्मत हैं वे लोग जो ख़ुद तो मिट्टी में चले गए, मगर उनके गुनाह पर उकसानेवाले आमाल, उनकी झूठी बातें या उनकी गुमराह करनेवाली सोच हमेशा किताबों, रिसालों, फ़िल्मों, ड्रामों या कैसेटों या रिकार्डों की शक्ल में उनकी नुमाइन्दगी करते रहेंगे। इस तरह उनके ज़रिए लोगों के दिल और दिमाग़ बिगाड़ने का काम जारी रहेगा।

इसी लिए कुछ बुज़ुर्गों का क़ौल (कथन) है—

> "ख़ुशक़िस्मत है वह शख़्स जिसके मरने के बाद उसके गुनाह भी मर जाएँ और बदक़िस्मत है वह शख़्स जिसके गुनाह उसके मरने के बाद बाक़ी रहें।"

वक़्त को बरबाद कर देनेवाली आफ़तों से आगाही

इसमें शक नहीं है कि बहुत-सी ऐसी आफ़तें हैं जो इनसान के वक़्त को बरबाद कर देती हैं और उसकी उम्र को खा जाती हैं। ख़ासकर उस वक़्त जब वह उनकी संगीनी से वाक़िफ़ नहीं होता। वे आफ़तें ये हैं—

1. ग़फ़लत

यह एक ऐसा मर्ज़ है जो इनसान के दिलो-दिमाग़ को इस तरह लग जाता है कि वह दुनिया में घटित होनेवाले हादसे, वाक़िआत और रात-दिन के आने-जाने के सिलसिले में जागरूकता की अन्दरूनी क़ुव्वत को खो बैठता है और मुख़्तलिफ़ चीज़ों की हक़ीक़तों और मामलात के नतीजों से बेपरवाह हो जाता है। इसी लिए उसके ध्यान का केन्द्र शक्ल होती है न कि रूह, और उसकी नज़र हक़ीक़तों को छोड़कर ज़ाहिर पर और गूदे (मग्ज़) को छोड़कर छिलकों पर और अंजाम और नतीजों को छोड़कर आग़ाज़ पर होती है। ग़फ़लत के मरज़ की इसी संगीनी की वजह से क़ुरआन मजीद ने जगह-जगह पूरी शिद्दत के साथ इससे आगाह किया है। यहाँ तक कि ग़फ़लत में रहनेवालों को जहन्नम का ईंधन क़रार दिया है और उन्हें बेज़बान जानवरों से ज़्यादा गुमराह बताया है—

"यह हक़ीक़त है कि बहुत-से जिन्न और इनसान ऐसे हैं जिनको हमने जहन्नम ही के लिए पैदा किया है। उनके पास दिल हैं, मगर वे उनसे सोचते नहीं। उनके पास आँखें हैं, मगर वे उनसे देखते नहीं। उनके पास कान है मगर वे उनसे सुनते नहीं। वे जानवरों की तरह हैं, बल्कि उनसे भी ज़्यादा गए-गुज़रे, ये वे लोग हैं जो ग़फ़लत में खो गए हैं।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-179)

क़ुरआन उन लोगों की मज़म्मत करता है, जो सच्चाई और यथार्थ को छोड़कर ज़ाहिरी इल्म का एहतिमाम करते हैं, उनके सिलसिले में कहता है—

"अल्लाह कभी अपने वादे की ख़िलाफ़वर्ज़ी नहीं करता, मगर ज़्यादातर लोग जानते नहीं हैं। लोग दुनिया का बस ज़ाहिरी पहलू

जानते हैं और आख़िरत से वे ख़ुद ही ग़ाफ़िल हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-30 रूम, आयतें-6,7)

अल्लाह अपने रसूल (सल्ल०) को मुख़ातिब करके कहता है—

"(ऐ नबी!) अपने रब को सुबह-शाम याद किया करो दिल-ही-दिल में गिड़गिड़ाते और डर के साथ और ज़बान से हल्की आवाज़ के साथ तुम उन लोगों में से न हो जाओ जो ग़फ़लत में पड़े हुए हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-205)

एक दूसरी आयत में इस तरह मुख़ातिब किया है—

"किसी ऐसे शख़्स की इताअत (फ़रमाँबरदारी) न करो जिसके दिल को हमने अपनी याद से ग़ाफ़िल कर दिया है और जिसने अपनी इच्छा और वासना की पैरवी इख़्तियार कर ली है और जिसका मामला हद से आगे बढ़ गया है।"

(क़ुरआन, सूरा-18 कह्फ़, आयत-28)

यक़ीनन ग़फ़लत एक बड़ी मुसीबत है। इसी ग़फ़लत के नतीजे में आ मुस्लिम उम्मत (समुदाय) का हाल यह हो गया है कि उसपर ऐसी बड़ी-ब ख़ौफ़नाक घटनाएँ घटित हो रही हैं जो पहाड़ों को हिला दें, मगर हमा उम्मत की बेहिसी का आलम यह है कि न तो वह उनसे कोई सबक़ ले है और न अपने अन्दर कोई बदलाव पैदा करती है, बल्कि उसकी ग़फ़ल इस इन्तिहा को पहुँची हुई है कि यह सब कुछ देखने के बावजूद उसके का पर जूँ तक नहीं रेंगती। वह इन दुर्घटनाओं की इस तरह आदी हो गई मानो यह सब कुछ एक ड्रामा है या किसी ड्रामे का सीन है।

इसी लिए हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) दुआ करते थे—

اَللّٰهُمَّ لَا تَدَعْنَا فِيْ غَمْرَةٍ، وَلَا تَأْخُذْنَا عَلٰى غِرَّةٍ وَلَا تَجْعَلْنَا مِنَ الْغَافِلِيْنَ.

अल्लाहुम-म ला त-दअना फ़ी ग़म्रतिन वला तअख़ुज़ना अला ग़िर-रतिन वला तजअलना मिनल-ग़ाफ़िलीन।

"ऐ अल्लाह हमें सख़्ती में न छोड़ और हमें ग़फ़लत की हालत में न पकड़ और हमें ग़ाफ़िलों में से न बना।"

सह्ल-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि.) फ़रमाते थे कि तीन क़िस्म के लोगों की संगति से परहेज़ करो—

"बुराई को अनदेखा कर जानेवाले आलिम, जाहिल सूफ़ी और सरकश ज़ालिम।"

2. टाल-मटोल की आदत

टाल-मटोल की आदत इनसान का वक़्त बरबाद कर देनेवाली बहुत ही ख़तरनाक आदत है। यह आदत कभी इनसान को अपने वक़्त से फ़ायदा उठाने नहीं देती है, बल्कि इस आदत का व्यक्ति इस हद तक अपने कामों को टालने का आदी हो जाता है कि 'कल' का शब्द उसकी पहचान और उसके मामलों का मिज़ाज बन जाता है। नतीजे में ऐसा इनसान बिलकुल निकम्मा और नाकारा होकर रह जाता है।

क़बीला अब्दुल-क़ैस के एक आदमी से कहा गया कि हमें वसीयत करो तो उसने कहा—

"टाल-मटोल की आदत से होशियार रहो।"

एक दूसरे बुज़ुर्ग का क़ौल (कथन) है—

"टाल-मटोल की आदत इबलीस की फ़ौज का एक सिपाही है।"

इसलिए तुम्हारा फ़र्ज़ यह बनता है कि अपने वक़्त का भरपूर इस्तेमाल करो और आज तुम्हें जो वक़्त मिला हुआ है उसमें ज़्यादा-से-ज़्यादा फ़ायदा पहुँचानेवाला इल्म हासिल करो और नेक अमल करो। किसी काम को आनेवाले कल पर मत टालो, वरना अभी जो तुम्हें वक़्त मिला हुआ है वह तबाह व बरबाद हो जाएगा और फिर कभी लौटकर न आएगा। इसलिए तुमको आज के दिन में बोना चाहिए ताकि आनेवाले कल में फ़सल काट सको। अगर तुमने ऐसा न किया तो तुम्हारे हिस्से में हसरत और शर्मिन्दगी के सिवा कुछ न होगा।

हसन बसरी (रह०) फ़रमाते हैं कि टाल-मटोल से बचो, इसलिए कि तुम्हारा ताल्लुक़ आज से है, न कि आनेवाले कल से। अगर वह कल तुम्हें मिल भी जाए तो उसके साथ वही मामला करोगे जो तुमने 'आज' के साथ किया था और अगर 'कल' तुम्हारा न हुआ तो तुमको आज की कोताहियों पर पछताना पड़ेगा।

इस बुरी आदत के बुरे नतीजे

टाल-मटोल और आज के काम कल पर टालने में बुहत-सी आफ़तें हैं—

1. तुम इस बात की ज़मानत नहीं दे सकते कि कल तक तुम ज़िन्दा रहोगे।

किसी शहर के हाकिम ने एक नेक आदमी को अपने यहाँ दावत पर बुलाया तो उन्होंने यह कहकर मना कर दिया कि मैं रोज़े से हूँ। हाकिम ने कहा आज रोज़ा तोड़ दें, कल रख लें। इसपर नेक आदमी ने कहा, "क्या तुम इस बात की ज़मानत देते हो कि मैं कल तक ज़िन्दा रहूँगा।"

कौन किसी के लिए इस बात की ज़मानत दे सकता है कि वह कल तक ज़िन्दा रहेगा, जबकि मौत अचानक आती है, और उसके आने के कई सबब होते हैं?

हादसे की मौत हमारे ज़माने में पहले के ज़माने के मुक़ाबले में कहीं ज़्यादा है, बावजूद इसके कि इस दौर में चिकित्सा और साइंस ने काफ़ी तरक़्क़ी कर ली है। मगर चिकित्सा, बेहोशी और ख़ुनाक़ (कंठरोग) वग़ैरा से होनेवाली मौतों पर क़ाबू पाने में नाकाम है, इसी तरह सांइस उन मौतों के रोकने में नाकाम है जो जदीद (आधुनिक) तहज़ीब के मुख़्तलिफ़ आलात जैसे—मोटर गाड़ियाँ, हवाई जहाज़, बिजली के सामानों के ज़रिए से रोज़ाना होनेवाले हादसे के नतीजे में होती हैं। बल्कि यह कहना सही होगा कि सांइस ही ने मौत के ये साधन जुटाए हैं। क्योंकि इस उद्योग और कारीगरी के दौर से पहले इनसान हादसों से सुरक्षित था।

2. अगर तुम्हें कल तक की ज़िन्दगी की ज़मानत मिल भी जाए तो तुम उन बहुत-सी रुकावटों से महफ़ूज़ नहीं रह सकते जो अचानक मरज़, हंगामी

मशगूलियत और अचानक मुसीबत की शक्ल में पेश आती रहती हैं। इसलिए समझदारी का तक़ाज़ा यही है कि तुम ख़ैर और भलाई के कामों और ज़िम्मेदारियों को अदा करने में जल्दी करो। यह बहुत ही बड़ी बेवक़ूफ़ी है कि तुम काम को लगातार टालते रहो यहाँ तक कि मौक़ा हाथ से निकल जाए और तुम्हारे पास हाथ मलने और शिकायत करने के सिवा कोई चारा न हो।

नबी (सल्ल॰) ने एक शख़्स को नसीहत करते हुए कहा—

"पाँच चीज़ों को पाँच चीज़ों से पहले ग़नीमत जानो : ज़िन्दगी को मौत से पहले, सेहत को बीमारी से पहले, फ़ुर्सत को मशगूलियत (व्यस्त हो जाने) से पहले, जवानी को बुढ़ापे से पहले और मालदारी को मुहताजी से पहले।" (हदीस : अहमद, नसई, हाकिम)

एक बुज़ुर्ग आलिम ने कुछ नौजवानों से कहा—

"काम करो उस दिन के आने से पहले जब तुम चाहने के बावजूद काम न कर सकोगे। मैं आज काम करना चाहता हूँ मगर कर नहीं सकता हूँ।"

हफ़्सा-बिन्ते-सीरीन कहती हैं—

"ऐ नौजवानो, काम करो और काम तो अस्ल में जवानी ही में होता है।"

3. हर दिन का अपना काम है और हर वक़्त की अपनी ज़िम्मेदारियाँ हैं। कोई वक़्त ऐसा नहीं है जो ख़ाली आता हो और अपने साथ नई ज़िम्मेदारियाँ न लाता हो। यही वजह है कि जब एक आदमी ने हज़रत उमर-बिन-अब्दुल-अज़ीज़ (रह॰) के जिस्म पर बहुत ज़्यादा अमल करने की वजह से थकान के लक्षण देखे तो उनसे कहा कि इस काम को कल पर टाल दें तो उन्होंने जवाब दिया कि एक दिन के काम ने तो मुझे थकाकर रख दिया है, और जब दो दिन का काम जमा हो जाएगा तब मेरा क्या हाल होगा!

इब्ने-अता (रह॰) ने फ़रमाया—

"वक़्त के अन्दर हक़ों को तो अदा किया जा सकता है, मगर वक़्त के हक़ों को अदा करना मुमकिन नहीं। जो वक़्त भी आता है तुमपर अल्लाह का एक नया हक़ वाजिब (अनिवार्य) करता है, और एक तय किए हुए मामले के साथ आता है। अगर तुमने उस वक़्त में अल्लाह का हक़ अदा नहीं किया, तो दूसरों का हक़ कैसे अदा करोगे?"

4. बेशक फ़रमाँबरदारी में देरी और भलाई के कामों में टाल-मटोल व वजह से इनसानी नफ़्स (मन) इन कामों को छोड़ देने का आदी हो जात है, और यही आदत जब इनसान के अन्दर अपनी जड़ें जमा लेती है तो फि उसकी यह एक और दूसरी आदत बन जाती है जिससे छुटकारा पाना बहु मुश्किल होता है। और मामला इस हद तक पहुँच जाता है कि आदमी अक़्ल तौर पर इस बात का क़ायल तो होता है कि अल्लाह और उसके रसूल व फ़रमाँबरदारी और नेक कामों में जल्दी करना ज़रूरी है, मगर वह अपने अज़ और इरादे में इतनी मज़बूती नहीं पाता है, जो उन कामों को करने में उसवे लिए सहायक और मददगार साबित हो, बल्कि उसके उलट वह अपने म में एक तरह का बोझ और काम से भागने या हटने की कैफ़ियत महसू करता है। और अगर किसी दिन भलाई के काम के लिए थोड़ा-बहुत च लेता है तो ऐसा लगता है कि उसकी पीठ पर पहाड़ लदा हुआ है।

हम देखते हैं कि इनसान इसी तरह की टाल-मटोल गुनाहों औ नाफ़रमानियों से तौबा करने में भी करता है, जिसका नतीजा यह होता है वि नफ़्स या मन गुनाह के करने और नफ़सानी ख़ाहिशों का आदी हो जाता है यहाँ तक कि गुनाहों का छोड़ना उसके लिए मुशकिल हो जाता है क्योंवि दिन-ब-दिन गुनाहों से उसकी दिलचस्पी में बढ़ोत्तरी होती रहती है। इस तर गुनाह का आकार बढ़ता रहता है और दिल पर उसका असर बढ़ता जात है, यहाँ तक कि उसकी कालिख दिल पर छा जाती है और उसकी तारीक पूरे दिल को इस तरह अपनी लपेट में ले लेती है कि हिदायत के नूर की पहुँ इनसान के दिल तक नामुमकिन हो जाती है।

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

"मोमिन जब कोई गुनाह करता है तो एक काला धब्बा उसके दिल पर पड़ जाता है, और अगर वह उस गुनाह से तौबा कर लेता है और उससे बाज़ आ जाता है और इस्तिग़फ़ार करता है तो वह धब्बा मिटा दिया जाता है। अगर वह शख़्स गुनाह में बढ़ता रहे तो काले धब्बों में भी बढ़ौत्तरी हो जाती है यहाँ तक कि उसका दिल उनके कालेपन से ढक जाता है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

आगे नबी (सल्ल०) फ़रमाते हैं कि यही वह ज़ंग (काला धब्बा) है जिसका ज़िक्र अल्लाह ने अपनी किताब में किया है—

"हरगिज़ नहीं, बल्कि अस्ल में इन लोगों के दिलों पर इनके बुरे कामों का ज़ंग चढ़ गया है।

(क़ुरआन, सूरा-83 ततफ़ीफ़, आयत-14)

5. अमल का इनसान से गहरा ताल्लुक़ है, बल्कि अमल ही उसके ज़िन्दा होने का लक्षण है। जो आदमी अमल नहीं करता है उसे ज़िन्दा रहने का कोई हक़ नहीं है। काम का मुतालबा इनसान से उस वक़्त तक है जब तक कि उसकी नब्ज़ हरकत कर रही है चाहे वह काम दीनी हो या दुनियावी।

यह हकीमाना क़ौल (कथन) बहुत मशहूर है—

"अपनी दुनिया के लिए इस तरह काम करो मानो कि तुम्हें हमेशा ज़िन्दा रहना है और अपनी आख़िरत के लिए इस तरह काम करो मानो कि कल तुम्हें मरना है।"

ज़माने को बुरा-भला कहना

ज़माने को बुरा-भला कहना और हमेशा उसके ज़ुल्मो-सितम और बद-नसीबी का शिकवा करना अमल की राह की उन आफ़तों और रुकावटों में से है जिनसे चौकन्ना रहना ज़रूरी है। कुछ लोगों का हाल यह है कि वह ज़माने को एक ऐसा विरोधी ख़याल करते हैं जो उनपर ज़ुल्म ढाता रहता है या ऐसा दुश्मन जो हमेशा उनके चक्कर में पड़ा रहता है। या उसे ऐसा ज़ालिम शासक तसव्वुर करते हैं जो बेगुनाहों को सज़ा देता है और गुनहगार को हिम्मतवाला बनाता है, और फ़ुलाँ के ख़िलाफ़ फ़ुलाँ ही हिमायत करता है। उनके ख़याल में ज़माना ये सारे काम बिना किसी वजह के सिर्फ़ ख़ाहिशों की पैरवी में करता है और उसके सारे काम बेसोचे-समझे होते हैं, इसी लिए कभी सही और ज़्यादातर ग़लत होते हैं।

ये सारी बातें अस्ल में तसव्वुरे-जबरीयत (ज़ुल्म की धारणा) का नतीजा हैं। इसलिए कि इस तसव्वुर या ख़याल के माननेवाले लोग और समाज इसकी आड़ में अपने को हर ज़िम्मेदारी से आज़ाद करने की कोशिश करते हैं, अपने आमाल और ग़लतियों की जवाबदेही से दूर भागते हैं और अपने गुनाहों का बोझ आपस में एक-दूसरे पर डालते हैं या ज़माना और तक़दीर या हुक्मे-इलाही को अपने गुनाहों का ज़िम्मेदार क़रार देते हैं।

हालाँकि इनकी ज़िम्मेदारी यह थी कि जब कोई मुसीबत इनपर आती, या कोई नेमत इनसे छिनती तो उसपर ये ग़ौरो-फ़िक्र से काम लेते और पस्ती से बुलन्द होकर गहरी नज़र से उनका जाइज़ा लेते और असबाब (कारणों) और असबाब के पैदा करनेवाले हालात में रब्त पैदा करके इस कायनात में जारी खुदाई के तरीक़ों के मुताबिक़ नतीजा निकालने की कोशिश करते। इसलिए कि ज़माने की हैसियत इसके अलावा कुछ नहीं है कि वह इन घटनाओं का गढ़ है जिन्हें अल्लाह तआला अपने तरीक़े के मुताबिक़ गरदिश देता रहता है। हदीस का मतलब भी यही है जो हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत की गई है, जिसमें नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"ज़माने को बुरा-भला मत कहो, इसलिए कि अल्लाह की ज़ात ही ज़माना है।" (हदीस : मुस्लिम)

चुनाँचे उहुद की जंग में जब मुसलमान नबी (सल्ल॰) के साथ होने के बावजूद शिकस्त से दोचार हुए और उसमें सत्तर (70) जाँनिसार सहाबा शहीद हो गए तो लोग आपस में इस मुसीबत और ज़ख़्म खाने की वजह से एक-दूसरे से पूछने लगे तो उस वक़्त उनको जो क़ुरआनी जवाब मिला वह यह है—

"यह तुम्हारा क्या हाल है कि जब तुमपर मुसीबत आ पड़ी तो तुम कहने लगे कि यह कहाँ से आई? हालाँकि (जंगे-बद्र में) इससे दो गुनी मुसीबत तुम्हारे हाथों (विरोधी पक्ष पर) पड़ चुकी है। (ऐ नबी!) इनसे कहो, यह मुसीबत तुम्हारी अपनी लाई हुई है। अल्लाह तो हर चीज़ पर क़ादिर (सामर्थ्यवान) है।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-165)

"यह अल्लाह की उस सुन्नत के मुताबिक़ हुआ कि वह किसी नेमत को जो उसने किसी क़ौम को अता की हो उस वक़्त तक नहीं बदलता जब तक कि वह क़ौम ख़ुद अपने अमल के तरीक़े को नहीं बदल देती।" (क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-53)

इसलिए मुसलमान को चाहिए कि जब उसपर कोई मुसीबत आए तो उसकी वजह अपने अन्दर तलाश करे और फिर अपने रब की तरफ़ रुजू होकर तौबा और इस्तिग़फ़ार के साथ उसका दरवाज़ा खटखटाए और अपनी ज़बान से वे कहे जो आदम और हव्वा (अलैहि॰) ने कहा था—

"ऐ हमारे रब! हमने अपने ऊपर ज़ुल्म किया, अब अगर तू ने हमसे दरगुज़र न फ़रमाया और रहम न किया तो यक़ीनन हम तबाह हो जाएँगे।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-23)

और वे कलिमात कहे जो मूसा (अलैहि॰) ने उस वक़्त कहे थे जब वे अपने रब से मुनाजात करके अपनी क़ौम के पास लौटे कि वह गुमराह हो गई है—

"ऐ मेरे रब! मुझे और मेरे भाई को माफ़ कर और हमें अपनी रहमत में दाख़िल कर, तू सबसे बढ़कर रहम करनेवाला है।"

(क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-151)

उन ख़ुदा-परस्तों की बात भी अपनी ज़बान से दुहराए जो उन्होंने उस वक़्त कहे थे जब उनके कुछ साथी हक़ की राह में शहीद हो गए—

"उनकी दुआ बस यह थी कि 'ऐ हमारे रब! हमारी ग़लतियों और कोताहियों को माफ़ कर, हमारे काम में तेरी हदों से जो कुछ आगे बढ़ गया हो उसे माफ़ कर दे, हमारे क़दम जमा दे और इनकार करनेवालों के मुक़ाबले में हमारी मदद कर।'

आख़िरकार अल्लाह ने उनको दुनिया का सवाब भी दिया और इससे बेहतर आख़िरत का सवाब भी दिया। अल्लाह को ऐसे ही नेक अमल करनेवाले पसन्द हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-147)